प्रकाशक—क्षितीन्द्र मोहन मित्र,
माया कार्यालय,
इलाहाबाद

सब प्रेम, प्रेम नहीं

इलाहाबाद से बाम्बे मेल 'शटल' (Shuttle) छूटने का घण्टा बज गया। रामप्रसादजी ने कहा—"सब सामान ठीक है न? फिर से एक बार देख लो, विनय! मालती, आओ हम लोग उतर पड़े।"

रामप्रसादजी, उनकी पत्नी और लड़की मालती डब्बे से प्लेटफार्म पर उतर पड़े। विनय भी साथ-साथ उतर आया।

रामप्रसादजी की पत्नी बोली—"तुम्हारे पिता नहीं आ सके"" फिर कुछ दबे हुए स्वर में बोली—"अपना स्वास्थ्य ठीक रखना बेटा! बहुत दूर जा रहे हो!"—फिर अपनी आँखें पोंछ डालीं।

विनय के मुँह की ओर ताक कर रामप्रसादजी बोले—"उदास न बनो। नई जगह जा रहे हो! प्रसन्न बनो! हरेक 'मेल' में जरूर चिट्ठी भेजना ..."

"हाँ, जरूर।" कह कर विनय ने आँखें नीची कर लीं, इसलिये कि उसकी डबडबाई आँखें दीख न पड़ें।

गार्ड ने सीटी बजाई, विनय ने मालती के मुँह की ओर देखा—उसकी रात्रि की भाँति गम्भीर, नदी की तरह अगाध आँखें वेदना से भरपूर थीं। विनय मालती से कुछ नहीं कह पाया, ट्रेन पर बैठ गया। ट्रेन के स्टेशन छोड़ देते ही वह खिड़की से काफी झुक कर रूमाल उड़ाने लगा, उसकी आँखें आँसू से इतनी भर आई थीं कि धुँधली देखने लगी थीं।

घर छोड़ कर वह अभी ज्यादा दूर नहीं गया था। होस्टल के सिवा और कहीं ज्यादा दिनों नहीं रहा था। आज तक माँ-बाप के प्यार और आनन्द में पलने को बिलकुल छिपा रक्खा था—समाज के कोई

मगर जाने क्यों मालती के मन में यह ख्याल आ जाता था कि विनय के साथ अगर और किसी युवती की जान-पहिचान हो जाये, तो विनय ठीक इसी तरह उससे भी कहेगा—'नहीं तो मैं इतनी जल्दी, इतना प्रेम कैसे करने लग गया?'

मालती के साथ विनय का अनेक विषयों पर तर्क होता था। मालती की रायों पर वह गहरी आलोचना करता, फिर आखिर में कहता—"मैंने व्यक्तिगत रूप से नहीं कहा—मैंने तुमसे नहीं कहा, क्योंकि तुम जगत् की अन्य सब लड़कियों से बहुत ऊँची हो!"—मानो विनय ने दुनिया की सभी लड़कियों की जाँच कर ली हो!

मालती कहती—"मुझे, कृपया, उतने ऊँचे पर न ले जाइये उसमें क़दम-क़दम पर गिर जाने का डर है।"

विनय कुछ नाराज़ होकर कहता—"नकली होना आजकल का फैशन हो गया है.."

मालती सोचने लगी—'विनय अभी तक बहुत सरल है, अकेला परदेश में जाने कितनी तकलीफ़ उठायेगा'..

खिड़की के बाहर ताकते हुए मालती सोचने लगी—जाने वह कितनी दूर चला गया होगा। वह कल्पना की आँखों से देखने लगी। उसकी ट्रेन सिंचित गांव, मैदान, खेती, जंगल, नदी पार करते हुए दौड़ रही है। विनय को शायद नींद नहीं आ रही होगी। मलीन मुँह किये बैठा होगा—शायद कभी कभी वियोग से दुखी आँखों में आँसू भी आ रहे होंगे।

और तब—यह सोचते-सोचते मालती की आँखें छलछला पड़ीं।

(३)

दो साल के बाद...

जाड़े की मीठी धूप में चमचमाती हरियाली है। लाल साड़ी पहिने मालती एक सितार हाथ में लेकर बगीचे में बैठी थी। मृदुमन्द हवा

"आज कलकत्ते की डाक देर से आई है—इसलिये..." कह कर कई चिट्ठियाँ मालती के हाथ मे दी। उसमे विनय के दो पत्र थे—एक मालती के नाम पर और दूसरा रामप्रसादजी के।

किताब रख कर मालती ने चिट्ठी खोली। विनय ने लिखा था—
"मैं तुमसे एक बात कहूँगा—शायद वह कुछ कठोर मालूम हो, मगर मैं निष्कपटता का पक्षपाती हूँ, इसीलिये मैं साफ-साफ कहने को मजबूर हूँ। मैने अच्छी तरह से सोच लिया है कि तुम्हारे साथ मेरी शादी होना असम्भव है। सिर्फ शादी की बातचीत पक्की हो गई है, इसीलिये सब ओर न सोचकर, इस तरह का बन्धन स्वीकार नहीं कर लिया जा सकता। तुम्हारी उम्र की लडकियाँ इस मुल्क मे खेल-कूद में समय काटती हैं। सब प्रेम, प्रेम नहीं—यह मै यहाँ आकर समझ गया हूँ। असल प्रेम क्या है—कितना गहरा है, मुझे यहां पता चला। तुम भी शायद भविष्य मे, इस बन्धन को तोड देने के लिये मुझे धन्यवाद दोगी। अभी अगर मेरा व्यवहार कडुवा लगे तो इस बात को याद करना कि One has got to be cruel in order to be kind—(दयालु होने के लिये कठोर होना पडता है)।"

मालती स्थिर नयनों से—स्तब्ध होकर बाहर की धूप से उज्ज्वल जमीन को ताकने लगी। उसके चेहरे पर लाली छा गई। विनय के जाने के वक्त की बाते उसे याद आ रही थी ..'मै एक क्षण के लिये भी नहीं भूल सकूँगा ..' आज विनय ने दुनिया देख ली है, अपने को पहिचान लिया है और आविष्कार कर लिया कि सब प्रेम, प्रेम नहीं। .विनय का खरा भारतीय आदर्श, उसकी सनातन पत्नी समझ—जाने किस कोने मे छिप रही!

समय बीतने लगा...

(४)

मालती बी० ए० पास हो गई

आदमी बाजा बजाने के बहाने भीख माँग रहा है,—उसके बाजे का सुर बजा रहा है—"Oh ! To be in England, now that summer is here"—आह ! (बसन्त आरम्भ ! आह ! यदि इंगलैंड मे होता) सुनकर लम्बे-चौडे उस पुलिसवाले की कर्त्तव्य-कठोर दृष्टि भी कोमल हो गई है।

घनी घास के अन्दर पैर छिपाये-मालती पत्र लिख रही है। कहीं पास ही बैठा हुआ कोकिल खूब बोलते-बोलते अभी चुप हो गया है। मालती एक सखी को लिख रही थी—

"अभी यहाँ सन्ध्या हो रही है। आसमान पर एक सुन्दर सुनहली आभा है; बडा सुन्दर दिख रहा है।

"मै दो लडकियो के साथ लन्दन से यहाँ दो-चार दिन के लिये सैर करने के लिये आई हूँ। वे अभी एक दावत में जा रही हैं; मैं टहलने के लिये चली आई, इसलिये वे नाराज हो गई हैं। वे कहती हैं, हिन्दुस्तानी और रूसी हृदय मे बहुत सादृश्य है।

"इस गाँव मे हरियाली की भरमार है। लन्दन मै पसन्द नहीं करती, धुआँ, चिल्लाहट आदि से ऊब जाती हूँ। यहाँ आकर मेरी आँखे स्निग्ध हो उठी हैं !

"यहाँ के आदमी सदा काम मे लगे हुए, सब काम बहुत जल्दी करना चाहते हैं। यहाँ धीरे से चलना, कोई जानता ही नहीं। सभी किसी न किसी तरह आगे बढना चाहते हैं। कहाँ जाना चाहते हैं ? कहाँ से क्या पाना चाहते हैं ? वे क्या जानते हैं ! नहीं। "पर आगे बढ़ो", यही एक गहरा नशा इन अँगरेजो पर है—सफर चाहे जहाँ खतम हो इसकी परवाह नहीं।

"इन्हे परिवर्त्तन मे गहरा विश्वास है। यह विश्वास हम लोग भी रखते हैं, मगर विश्वास को काम मे लाने के पहले हम लोग दर्जनों बार सोचते हैं। इन लोगों को सोचने के लिये समय नहीं है—ज़रूरत

ही नहीं होती। पढ़ाई के लिये आपने हम लोगों का त्याग कर दिया है. ”

जीवनलाल के मित्रों ने आपस में कुछ नाराजगी से कहा—“बस, जीवन का मध्ययुग शुरू हो गया। अब क्या वह हम लोगों के साथ रहेगा! चलो, हम लोग चलें।”—वे चले गये।

मालती बोली—“बहुत देर हो गई है। चलिये इस मैदान के बीच से चलें—जल्दी पहुँच जायँगे। मगर आपके मित्रवर्ग तो चले गये।”

“जाने दीजिये।”

अँधेरा गहरा हो रहा था। ओस से घास भीगने लगी थी। एक बार मालती ठोकर खाकर गिरते-गिरते बच गई—शायद घास के अन्दर खरगोश का बिल था। जीवन ने हाथ बढ़ा कर कहा—“मेरा हाथ पकड़िये—यहाँ शायद बहुत से बिल हैं।”

अपने गर्म हाथ के बीच मालती का हाथ दबा कर जीवन बोला—“आपका हाथ बहुत ठण्डा मालूम हो रहा है।”

मालती ने जवाब दिया—“पर मेरा हृदय गर्म है।”

दोनों चुपचाप चलने लगे। जीवन कभी चुप नहीं रह सकता है, मगर अब वह चुप है। मालती की बात ने कुछ अनमना हो गया था। उसने मालती की ओर देखा—कुहरे के अन्दर आभा की भाँति अँधेरे में अस्पष्ट-सा मालती का सुन्दर शरीर दीख रहा था। यह क्या सोच रही होगी? किस नशे ने, किस लिये, चारों ओर की बात दुनिया से यह अपने को अलग रखती है?—कौन ऐसी बात इसके हृदय में है, जो इसे सदा बेहोश सी रखती है? जीवनलाल सोच रहा था, कैसे वह मालती का ख्याल रखेगा—उसमें जीवन भर देगा..

जीवन ने जवाब दिया—"मगर आप ही इन छोकरियों से मेल-जोल रखने में सबसे आगे बढ़े हुए हैं। अब मातृ-भाषा के अन्तराल में गालियाँ भी दे रहे हैं।"

वह बोला—"मैं स्वदेश क्यों नहीं लौट रहा हूँ? बस, इन्हीं छोकरियों के कारण। आप लोग तो अभी बच्चे हैं। क्यों नहीं मेल-जोल रक्खूँगा—अच्छी तरह से मेल-जोल रक्खूँगा। आनन्द क्या छोड़ना चाहिये! मगर हाँ, होशियारी से!. बुरी तरह फँस जाना मेरा सिद्धान्त नहीं है।" कह कर वह ठहाका मार कर हँस पड़ा।

मगर फिर उसकी हँसी मालती को देख कर सहसा रुक गई। मालती उसे देखकर चौंक पड़ी।...अरे! विनय! कई क्षण तक दोनों एक दूसरे से बातें नहीं कर पाये।

तब युवक बोला—"पहिचान सकती हो, मालती?"

मालती बोली—"हाँ, आप अभी तक स्वदेश नहीं लौटे?"

"नहीं! कई आवश्यक कामों से अभी तक नहीं लौट सका। मैंने तुम्हारा नाम कई बार सुना था, मगर ठीक नहीं समझ सका था। फिर अखबार में तुम्हारी तस्वीर देख कर पहिचान पाया।"

"अच्छा!"

"तुम यहाँ कहाँ ठहरी हो? कब तक रहोगी?"

मालती ने पता कह दिया।

ब्रिज के टेबिल पर कुछ हल्ला मचा। मालती ने जाकर उधर ध्यान लगाया।

उस दिन उत्सव के अन्त में होटल में लौटते समय मालती को 'ओवर-कोट' पहिनाते हुए जीवन ने पूछा—"आप विनय कुमार को पहले से पहिचानती थीं?"

"जी हाँ, अच्छी तरह से!"—क्या मालती के स्वर में परिहास था?

कर डाली—यह मान रहा हूँ। मेरी उस गलती को दुरुस्त करने के लिये तुम्हे मुझे मौक़ा देना चाहिये।"

विनय अच्छी तरह से समझ गया था, उसने क्या गलती की है। नेली-मेरी-फेनी का दल जबान पर 'प्यारे' कहने पर भी जेब की तरफ ज्यादा ध्यान लगाती है।

कुछ देर तक चुप रह कर मालती बोली—"आपने शायद मुझसे शादी न कर गलती की है—पछता रहे हैं। अब उस गलती को सुधारना चाहते हैं। मगर मैं गलती नहीं करना चाहती।"

विनय ने देखा—मामला गडबड़ है। अब उसकी आँखों मे आँसू आ गये। वह बोला—"मै नहीं समझा।. .कुछ दिन के लिये मैंने अपनी बुद्धि खो दी थी—मोह मे फँस गया था, मगर अब देख रहा हूँ, मेरा हृदय तुमसे वैसे ही प्रेम करता है।.. कुछ दिन के लिये खो गया था। मेरा विश्वास करो मालती!" फिर जाने क्या सोच कर वह कहने लगा—"तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हे मुझको ही सौंपा था। मेरे उस हक़ को क्या तुम ठुकरा दोगी? उस समय तुम भी मुझसे शादी करना चाहती थी। कुछ प्रेम भी मुझसे करती थी..."

मालती के ओठों पर जरा मुस्कान आ गई। वह बोली—"पुरानी बात को जाने दीजिये। अब मैं आपसे शादी नहीं करना चाहती।"

विनय नाराज़ हो गया। वह परिहास के स्वर मे बोला—"अच्छा! तो क्या जीवनलाल को देख कर तुम्हारी इच्छा बदल गई?"

मालती का मुँह लाल हो गया। वह बोली—"इससे आपका मतलब?"

वह बोला—"नहीं, इसमे मेरा क्या मतलब हो सकता है! मगर यह जान रक्खो, चाहे उसके पास जितना धन रहे, वह तुमसे कभी शादी नहीं करेगा। यह आशा दिल मे न रखना।...वह तुम्हें, दो

वह ऐसा न भी समझता हो, तो भी जब लोग उससे कहेंगे, तो उसे क्या खयाल होगा ? वह मालती को दया की दृष्टि से देखेगा।. . ओफ ! मालती के लिये यह असहनीय है। वह इस कलङ्क से अपने को ज़रूर बचायेगी—वह किसी तरह इस कलङ्क को सिर पर नहीं लेगी।

बहुत देर तक सोच कर मालती ने अपने मन को स्थिर कर लिया।

(८)

जीवनलाल दक्खिन फ्रान्स में अपने एक काम के लिये गया था। लौट कर उसने सुना कि मालती हिन्दुस्तान लौट गई हैं। उसके लौटने के कई दिन पहले जहाज छूट गया था।

ऐसी खबर के लिये जीवन बिलकुल तैयार नहीं था—वह चकित हो गया। कम से कम मालती यह तो कह सकती थी कि फलाँ तारीख़ को वह जा रही है। इतने दिनों की दोस्ती मे क्या उसे यह जरा-सा अधिकार नहीं मिलना चाहिये था ? इतनी घृणा ! जीवनलाल छटपटाने लगा—मन दुःख से भर गया। मालती उसे इतने सहज से त्याग कर चली गई, मगर वह किस तरह उसे भूल सकता है ? मालती को पहले-पहल जिस दिन उसने देखा था—वह क्या कभी भूलने की बात है ?...जहाज के 'डेक' पर मालती किस खूबी से खड़ी थी। उसकी पतली देह की हरेक रेखा छन्द-सी सुगठित, सुन्दर थी। उसकी आँसू से डबडबाई दो अनोखी आँखें—इन्होंने जीवनलाल के हृदय को उदास कर दिया था। जाने किस अशुभ क्षण में जीवन ने उसे देखा था कि उसकी तक़दीर मे मालती एक दुःखदायक स्मृति हो कर रह गई !

जीवनलाल बहुत देर तक खिड़की पर टेक देकर बाहर की ओर स्थिर नयनों से देखता रहा। दुनिया मे गहरा अँधेरा था, आसमान

सौभाग्य की बात है। भला, लोग कभी ऐसी बातें सोच सकते हैं ?... मालती अपना कर्त्तव्य कर चली गई, अब जीवन को भी अपना कर्त्तव्य करना चाहिये। इतने दिनो तक मालती ने जिस बात को नहीं कहा था, गहरे दु:ख से अब उसने कह दी। .जीवन का हृदय आनन्द से नाचने लगा।

मालती अब बहुत दूर चली गई है। .मगर जीवन ने निश्चय कर लिया, किसी तरह मालती को पाना चाहिये।

... . ..

कराची 'एरोड्रोम' मे 'एयर-मेल' उतरी। चार सवारियो थीं—उसमे जीवनलाल भी था। उसका चेहरा गम्भीर था। मगर क्या वह आनन्द के नशे मे नहीं था ?..

दो दिन बाद, बम्बई—'बैलर्ड पीयर' मे जहाज की प्रतीक्षा मे वह खड़ा था। वहाँ भी उसका शान्त, गम्भीर चेहरा था। मगर जब मालती जहाज पर से उतर कर उसके सामने आ गई और दोनों ने एक दूसरे को देखा, तो जीवन विचित्र खुशी से पागल था। और मालती ?

इसका जन्म हुआ था। पता नहीं इसी, वजह से या किसी और बात से, यह आदमी बहुत शराबी और बदमिज़ाज़ी था। शराब पीकर जब वह चेहरा लाल करके बैठा रहता, तब मजाल क्या कि कोई उसके सामने जाय!

एक दिन उस सौदागर का दल एक पहाड पर की सँकरी सड़क पर से चल रहा था। एकाएक साई-सिऊँग के घोडे ने ठोकर खाई और गिर पडा, उसकी पीठ पर का असबाब चारो तरफ बिखर गया और कुछ चीजें लुढक कर पहाड के नीचे खड्ड मे जा गिरी।

चू-को-ल्याग दल के सबसे आगे घोडे पर सवार होकर जा रहा था—दल से वह काफी दूर बढ गया था। इसीलिये इस दुर्घटना की बात सुनने मे उसे देर लगी। वह जब शाम को घोडे से उतर कर रात बिताने के लिये जगह ढूँढ रहा था, तब पीछे से उसका दल आ पहुँचा। उनसे चीज़े खोने की बात सुन कर बडा नराज हो उठा। उस समय वह नशे मे झूम रहा था—दिमाग ठीक नहीं था। जुबान के आगे जो कुछ आया, कह कर उसने साई को गाली दी। साई यह गाली बरदाश्त नही कर सका, उसने भी खूब गाली दी। झगड़ा लग गया। क्रोध से चू-को-ल्याग पागल हो उठा। घोडे की पीठ पर एक चमडे की थैली मे उसका पिस्तौल रहती थी, वह उस थैली को निकालने गया। तब साई-सिऊँग अपनी जान बचाने के लिये भागा। पिस्तौल की थैली कच्चे चमडे की थी—चमडे ने सूख कर पिस्तौल को जकड लिया था—किसी तरह भी पिस्तौल नहीं निकल रही थी। चू-को-ल्याग खीचा-तानी करने लगा। तब तक साई-सिऊँग भाग निकला। पिस्तौल जब निकली तब चू-को-ल्याग ने देखा कि साई दृष्टि से ओझल हो गया है।

साई भागा चला जा रहा था। जगल मे काफी दूर तक जाकर

कीमत पर बिकवा देगा—वह बाजार का दाँव-पेच अच्छी तरह जानता है, आदि। किसान उसकी इन सब उडी-उड़ी-सी बातों पर अविश्वास करता हो, सो नहीं। भविष्य मे एक बडा-सा हाथ मारने की आशा से वह बहुत आनन्द से साई का पालन कर रहा था।

साई मे अनेक गुण थे। उसकी बातों की बनावट ऐसी होती थी कि लोग सहज ही उसके वश मे हो जाते थे। कई किसानों को राजी करके उस गाँव में धधा करना उसने शुरू कर दिया। किसानो से रुई लेकर वह चीनी महाजनों के पास बेच आता और किसानों से लाभ का कुछ भाग लेता। इसी तरह थोडे दिनो मे वह उसी गाँव मे जम कर बैठ गया। धीरे-धीरे धन जमा करने लगा और गाँव के मुखिया की लड़की से उसकी शादी भी हो गई। तब उसने कुछ ज़मीन मोल लेकर खेती करना शुरू कर दिया। दिन पर दिन उसकी हर तरह से तरक्की होने लगी।

कुछ सालों के बाद वह एक पुत्र का पिता हुआ। बच्चे की उम्र जब चार साल की हुई, तब साई सोचने लगा कि कैसे बच्चे को पढाने का अच्छा इन्तजाम हो। उस गाँव मे अपढ पहाडियों का निवास था। वहाँ कोई विद्यालय नहीं था। एक अखाड़ा (मठ) था, वहाँ लिखना-पढना सिखाया तो जाता था, पर उस पर साई की कोई श्रद्धा नहीं थी; क्योंकि उसने सुना था कि अखाडे के पुजारी लोग बायीं तरफ से दाहिनी तरफ लगातार लिखते जाते हैं। कैसे अचरज की बात है!

यह सही है कि साई ने लिखना-पढना नहीं सीखा था; पर जब उसकी हालत अच्छी हो गई है तब उसके लड़के को ज़रूर ही लिखना-पढना सीखना चाहिये। वह जानता था कि भले घर के लडके विद्या सीखते हैं, और उनके सीखने की उपयोगी केवल एक भाषा है, वह है चीनी भाषा। अगर सिखाना हो तो लडके को चीनी भाषा ही

हैं, वहाँ के एक गाँव से भी मुक़ाबिला नहीं कर सकते ! वहाँ के मकान देखने ही लायक हैं। क्या तुम यहाँ की तरह मिट्टी के मकान सोच रही हो ? सो नहीं। ठोस पत्थर की बनी बड़ी-बड़ी इमारतें हैं। लम्बे-लम्बे कमरे हैं ! ऊँचे-ऊँचे फाटक—आसमान को छू रहे हैं। मकानों के सामने फूलों के बाग हैं। नौकर-चाकर शोर मचाते हैं। सड़कें चमकीले पत्थर की हैं, साफ-सुथरी—सुई गिरने पर उठा ली जा सकती है। देखोगी—देखोगी—सब देखोगी। अच्छे-अच्छे विद्यालय हैं, वहाँ बच्चे को पढ़ाऊँगा। लिख-पढ़ कर तुम्हारा बच्चा काज़ी होगा, तब समझोगी कि क्यों उस मुल्क में जा रहे हैं।"

ला-टी नाराज होकर उठ कर बैठ गई। बोली—"बक ही रहे हो ! वहाँ जाने में कितने दिन लगेंगे सो पहले कहो !"

"जाने में कितने दिन लगेंगे—अधिक दिन नहीं। ज्यादा से ज्यादा दो महीने। तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी—तुम डोली पर सवार होकर आराम से जाओगी।"

"बप्पा रे! दो महीने! मैं नहीं जाऊँगी। तुम्हारी मर्ज़ी हो तो तुम जाओ। तुम्हारी वे पत्थर की इमारतें, चमकीली सड़कें मैं नहीं देखना चाहती। हमारे ये मिट्टी के घर, पहाड़ी सड़कें ही अच्छी हैं !"

"जाओगी कैसे नहीं ! बच्चे को कौन पढ़ायेगा ? यहाँ रहने पर बच्चा तुम्हारी तरह मूरख ही रह जायगा ! यह नहीं होने दूँगा।"

ला-टी छाती पीट-पीट कर रोने लगी। वह बोली—"मुझे मारो, काट डालो, चाहे कुछ भी कर लो, मैं वहाँ किसी तरह भी नहीं जाऊँगी। तुम क्या मुझे ज़बरन ले जाओगे ? याद नहीं कि शादी के समय क्या इकरार किया था—मुझे यहाँ से कभी कहीं भी नहीं ले जाओगे। तब फिर ये सब कैसी बातें कह रहे हो ! गाँव भर के लोगों को शराब पिलाई गई, दस सूअर, पाँच मुर्गे मारे गये, तब कहीं हम लोगों की शादी हुई। उस शादी में तुमने जो इकरार किया है, क्या

कर रही हो! पर अभी तक तो तुम पर मार नही पड़ी है! मै देखते-देखते बूढ़ी हो गई, पति से मार खाते-खाते पत्नी की हड्डियाँ चूर-चूर हो जाती हैं—यही यहाँ का रिवाज़ है! तेरा भाग अच्छा है इसलिये तुझ पर अभी तक मार नही पडी है। तू तो सुख से है, बेटी—बदन पर दो-चार गहने पहने है, रानी की तरह दिन काट रही है। तुझे कुएँ से पानी उठाना नही पडता, घर तक बटोरना नही पड़ता। मैं तो इस गाँव के मुखिया की औरत हूँ, मेहनत करते-करते नाकों-दम होती हूँ। इस बुढापे मे भी मुझे मन-डेढ मन का अनाज लेकर शहर के बाज़ार मे बेचने के लिये जाना पड़ता है। तू तो रानी की तरह नौकर-चाकर पर हुक्म चलाती है, डोली पर बैठ कर घूमती है और गाँव भर के लोगों से लडाई-झगडा करती है! तेरे पति की तरह पति कितनी औरते पाती हैं? ज़रा सोच तो, उसने तुझे कितने सुख से रक्खा है! तू उसकी बात न मानेगी? न मानेगी तो तू फल भोगेगी। यहीं अकेली पड़ी रहना। तेरे दुःख की सीमा नही रहेगी। मै क्या कर सकती हूँ?"

लान्टी ने सोचा था कि माता पति के कार्य का प्रतिवाद करेगी, सो न करके पति का पक्ष लेते देख कर उसका दुःख उभड़ उठा। वह रोती-रोती बाप के पास गई।

बाप खेत पर हल चला रहा था। खेत बहुत दूर एक पहाड़ पर था। लान्टी पैदल वहाँ जाने लगी। चलने की मेहनत और धूप से वह शीघ्र ही थक गई। आख़िर हाँफती हुई बाप के पास आई और सब बाते कहीं। बाप ने उत्तर मे जो कुछ कहा, लान्टी का मनचाहा नहीं था। उसने कहा—"जब वह जाना चाहता है, तब उसे कोई रोक नहीं सकेगा। तुम न जाओ तो यहीं पडी रहना। लडके को वह कभी भी यहाँ छोड नहीं जायगा—वह उसे साथ ले जायगा। बच्चे को छोड कर अगर तुम न रह सकती हो, तो तुम्हें भी साथ जाना पडेगा। और अगर यहाँ रहना चाहती हो, तो शादी के पहले जिस

मुलायम, पर भीतर ही भीतर बड़ा भयानक था। वह जुबान के कौशल से अपना भीतरी रूप ढँकने की कोशिश करता था। उसे देखते ही लगता था कि बड़ा खुश मिज़ाज़ है—चेहरे पर सदा मुस्कान रहती,—गाने गाता रहता, एक-से-एक गप और मज़ाक की बातें करता रहता। वह ऐसी मज़ाकिया बातें करता कि लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। उसका स्वर भी बड़ा मीठा था, गाने गाकर वह लोगों को मुग्ध कर लेता था। लम्बा रास्ता तय करने के वक्त ऐसा साथी बड़ा ही मनोरंजक है। साई उसे पाकर बहुत ख़ुश हुआ।

साई और ली घोड़े पर सवार होकर आगे-आगे चल रहे थे, लान्टी बच्चे को लेकर परदा घिरी डोली मे पीछे थी। ली की नजर डोली पर थी। हवा से जैसे ही डोली का परदा एक तरफ हट जाता, वह कनखियों से लान्टी,को एक बार देख लेता। ली ने देखा कि लान्टी की शक्ल और चेहरा बुरा नहीं है—देह पर क़ीमती गहने भी हैं। पति-पत्नी में कुछ खटपट हो गयी है, यह उनके आपस के बर्ताव से वह शीघ्र ही समझ सका। उसने सोचा—'वाह! बड़ा अच्छा मौक़ा मिल गया है!' तब वह डोली के बहुत पास रह कर घोड़ा बढ़ाने लगा और मौका समझ कर बीच-बीच में प्रेम के गाने गुनगुनाने लगता। पहले वह लान्टी की ओर छिपे-छिपे कनखियों से देखता था, आखिर उसने साफ सीधी नज़र से देखना शुरू कर दिया, उस दृष्टि से लान्टी ने अपनी आँखें नीची कर लीं, सो नहीं। बाँसुरी की ध्वनि की तरह ली के मीठे स्वर का गाना सन्ध्या की हवा मे तैरता हुआ आकर उसके चित्त को उदास और चंचल कर रहा था। गाने की सब बात तो वह नहीं समझ रही थी, पर उस स्वर-लहरी में किसीके हृदय की ढँकी प्रेम की विह्वलता उसके पति पर विरुद्ध चित्त को किसी एक अनजान राह में खींच ले जा रही थी। ली के उस प्रेम-कटाक्ष मे ऐसा एक प्रबल प्रलोभन था कि उन आकर्षण की अवहेलना

"बचाओ—मुझे बचाओ—मार डाला—क़त्ल कर डाला! डाकू! डाकू! ली! ली! जल्दी आओ!"

सब बात खत्म होते न होते ली ने बड़ी तेजी से उस कमरे में प्रवेश किया। वह इस तरह आया कि मानो अब तक बाहर दरवाज़े की आड़ में खड़े रह कर वह ला-टी के इस शोर का इन्तजार कर रहा था। वह क्रोध से साई की ओर देखता हुआ चिल्ला कर बोला—"तू पागल है, या शराबी? रात को मेरी पत्नी के कमरे मे घुस आया है! ऍ!"

साई चकित होकर देखता ही रहा—उसकी ज़ुबान से एक भी बात नहीं निकली।

शोर सुन कर होटल के मालिक, वहाँ के नौकर-चाकर सब दौड़े हुये आये, साई को घेर कर खड़े हो गये। ली कड़ी आवज़ से कहने लगा—"निकाल दो—इसे यहाँ से निकाल दो! देख क्या रहे हो? इस तरह पागल और शराबियों को तुम लोग यहाँ टिकने देते हो—जिसकी शरारत से भले मानुस का नाकों दम होता है!"

होटल के मालिक ने सिर खुजलाते हुये कहा—"जनाब! वह तो आप ही के दल का आदमी है! आप लोगों के साथ आया है!"

ली ने कहा—"हम लोगों के साथ आया है, इसीलिये क्या हमारा क़ुसूर है? इसीलिये क्या तुम लोग पागल, शराबी, बदमाश लोगों को यहाँ रहने दोगे? भले घर की औरतों के लिये यहाँ आबरू नहीं है?"

साई क्रोध से थर-थर काँप रहा था। उसने एक छलाँग मार कर ली पर वार किया। होटल के लोगों ने एक दूसरे को अलग कर दिया। आखिर बड़ी खींचातानी, धक्कम-धक्का के बाद साई को होटल से बाहर निकाल कर फाटक बन्द कर दिया गया। तब साई सारी ताक़त से फाटक पर लात और घूँसे मारने लगा, पर वह लोहे का फाटक ज़रा

"बचाओ—मुझे बचाओ—मार डाला—क़त्ल कर डाला! डाकू! डाकू! ली! ली! जल्दी आओ!"

सब बात खत्म होते न होते ली ने बडी तेजी से उस कमरे मे प्रवेश किया। वह इस तरह आया कि मानो अब तक बाहर दरवाज़े की आड में खडे रह कर वह ला-टी के इस शोर का इन्तजार कर रहा था। वह क्रोध से साई की ओर देखता हुआ चिल्ला कर बोला—"तू पागल है, या शराबी? रात को मेरी पत्नी के कमरे मे घुस आया है! ऍं!"

साई चकित होकर देखता ही रहा—उसकी जुबान से एक भी बात नहीं निकली।

शोर सुन कर होटल के मालिक, वहाँ के नौकर-चाकर सब दौडे हुये आये; साई को घेर कर खडे हो गये। ली कड़ी आवज़ से कहने लगा—"निकाल दो—इसे यहाँ से निकाल दो! देख क्या रहे हो? इस तरह पागल और शराबियों को तुम लोग यहाँ टिकने देते हो—जिसकी शरारत से भले मानुस का नाकों दम होता है!"

होटल के मालिक ने सिर खुजलाते हुये कहा—"जनाब! वह तो आप ही के दल का आदमी है! आप लोगों के साथ आया है।"

ली ने कहा—"हम लोगों के साथ आया है, इसीलिये क्या हमारा क़ुसूर है? इसीलिये क्या तुम लोग पागल, शराबी, बदमाश लोगों को यहाँ रहने दोगे? भले घर की औरतों के लिये यहाँ आबरू नहीं है?"

साई क्रोध से थर-थर काँप रहा था। उसने एक छलाँग मार कर ली पर वार किया। होटल के लोगों ने एक दूसरे को अलग कर दिया। आखिर बड़ी खींचातानी, धक्कम-धक्का के बाद साई को होटल से बाहर निकाल कर फाटक बन्द कर दिया गया। तब साई सारी ताक़त से फाटक पर लात और घूँसे मारने लगा, पर वह लोहे का फाटक ज़रा

विचार कर हम लोगों से बाते कीजिये, क्योंकि अदालत मे यही सब बाते पेश होंगी।"

साई क्रोध से फूलता हुआ शुरू से आखिर तक सब बातें कह गया। फिर बहुत व्यस्त भाव से कहा—"अभी अपने प्रधान से एक बार मुलाकात करा दो।"

पुलिसमैन ने सिर हिला कर कहा—"असम्भव है! इतनी रात को उनसे मुलाकात होना असम्भव है। वे इस समय चण्डू पीने के लिये बैठे हैं। इसके सिवाय, उनको भेट देने लायक चीज तो तुम्हारे पास नही है—इतनी रात को दूकानें भी बन्द हो गई हैं, कोई चीज खरीदी भी नहीं जा सकती। यहाँ के काजी साहब बडे बदमिजाज हैं, जबानी बात नहीं सुनते हैं—लिख कर सब हाल जताना पड़ता है! तुम्हारी नालिश क्या है, यह पहले अच्छी तरह से लिखाना पड़ेगा। मैं तुमको एक आदमी के पास ले जा सकता हूँ—वह बहुत विद्वान् है! वह इस तरह तुम्हारी बाते लिख देगा कि अदालत में उन्हें पढने के समय कमरे भर के लोग चौंक पडेंगे। वही तुमसे कह देगा कि कौन-सी भेट देने पर काजी साहब तुम पर ख़ुश होंगे और किस वक्त मुलाक़ात करने पर तुम्हारा काम पूरा होगा। सब समय तो वे खुश मिज़ाज नहीं रहते हैं। जनाब देखिये, मुझसे भेट हो गई थी इसीलिये आपका काम भी बन गया। दूसरा कोई होता तो आपको अब तक हवालात में भर कर बेंत मारता होता।"

यह कह कर उसने साई की ओर अपना हाथ फैला दिया; क्षण भर में वह हाथ जेब में घुस गया।

साई उसे साथ लेकर उस वकील के घर गया। वहाँ अपनी दरख्वास्त लिखा लेकर, बाहर बरामदे के एक तरफ पडे रह कर रात काट दी। फिर सुबह ह [illegible] ास्त के साथ एक डाली भर कर फल और मिठाई क [illegible] े पास रक्खी। काज़ी साहब ने

तुम्हारा फैसला करने मे बहुत थक गया हूँ, आज और कुछ नहीं हो सकेगा—कल मैं अपनी राय कहूँगा। उसके लिये तुम्हे और पाँच तोले चाँदी देनी पडेगी—चाहो तो उसे अभी यहीं जमा कर सकते हो; क्योंकि वह चाँदी वसूल करने के लिये कल मेरा जो वक्त खराब होगा, उसकी क़ीमत भी ले लेना यहाँ का नियम है। मै आज ही तुम्हारी पत्नी और चोर को तलब करके उनका बयान ले रक्खूँगा। कल तुम्हे मेरी राय मालूम हो जायगी। अब तुम अपने काम पर जाओ।"

साई बहुत नाराज़ हो उठा। उसने कहा—"इस बेईमान धोखेबाज मुल्क मे मेरा काम ही क्या है? अपनी पत्नी और बच्चे को पा जाते ही मै चला जाऊँगा। वे इसी वक्त पकड कर लाये जायँ!"

उसकी इतनी मज़ाल है! अदालत मे काज़ी का हुक्म न लेकर बाते करने के कुसूर से साई पर फौरन एक तोला चादी का जुरमाना हो गया। साई चुप खडा रहा, चाँदी नहीं निकाली। तब अदालत के लोग दौडे हुए आकर बिना कहे-सुने उसकी जेब से चाँदी निकाल कर तौलने के लिये बैठ गये। जब तक तौल का कटोरा जमीन मे न जा लगा, तब तक वे उसमे चादी पर चाँदी के टुकडे रखते ही गये। इसी तरह उसकी सब चाँदी लेकर उन्होंने साई को अदालत के बाहर कर दिया। साई बाहर खडा-खडा चिल्लाने लगा। अदालत के लोगों ने तब उसे हवालात मे बन्द कर दिया, फिर कई घटों तक बन्द रखने के बाद छोड दिया।

इन घटनाओं के कुछ देर बाद ही लान्टी को साथ लिये ली अदालत मे हाज़िर हुआ। कोई बातचीत न करके ली ने एक भारी-सी सोने की चादर (यह साई-सिकॉग की ही सम्पत्ति थी) काज़ी के पैरों के पास धर दी। कहा—"हुज़ूर! मै इस जिले मे अक्सर ही आता हूँ। हुज़ूर को मै अच्छी तरह जानता हूँ हुज़ूर की हुकूमत और रोब से यह गुलाम पूरी तरह वाक़िफ़ है आप ही यहा के माँ-बाप है!

जी-जान से भागा। जो लोग उसे पकडने गये, उन्हे धक्का देकर वह भागता ही गया। दौड़ कर एकदम 'सवोश्रा' (लाठ) के भवन की ड्योढी पर खड़ा हुआ। वहाँ एक बहुत बड़ा ढोल रक्खा था; उस ढोल पर लगातार लकड़ी मारने लगा।

लाठ साहब के भवन की ड्योढी पर जो ढोल रक्खा है, वह अक्सर बजाया नही जाता। राज मे अगर विद्रोह हो तभी बजाया जाता है। बडे ज़ोर से आग लगने पर या कत्ल होने पर कभी-कभी बजता है—इससे कम जरूरत मे कभी नहीं बजता है। बहुत दिनों तक ढोल चुप था, आज एकाएक ढोल बजने पर लाठ के भवन में बड़ा शोर मच गया। 'सवोश्रा' घबडा कर आराम कमरे से निकल पडे। नौकर, ग़ुलाम, अमले, प्यादे, सैनिक, सरदार, नाऊ, गानेवाले, बजानेवाले जो जहाँ थे दौडे हुये आये, और सामने जो हथियार मिला, उठाते लाये। किसीके हाथ में सिर्फ ढाल थी, किसीके हाथ मे सिर्फ तलवार! किसीने धनुष लिया पर तीर नहीं लिया, किसीने तीर लिया पर धनुष नहीं लिया आदि।

साई बडी तेज़ी से ढोल बजाता जा रहा था और आसपास के लोगों की तरफ देखता जा रहा था। डर से कोई भी उसकी तरफ नहीं बढ सका। एक बहुत साहसी आदमी था, उसने ज़रा बढ़ कर साई के पास जाकर पूछा—"तुम क्या चाहते हो?" तब और लोग साहस पाकर उसके पास गये और एक साथ पुकार उठे—"तुम क्या चाहते हो!—क्या चाहते हो?"

साई बोला—"न्याय चाहता हूँ!"

'सवोश्रा' ने जब देखा कि कोई विद्रोह नहीं हुआ है, या किसी दुश्मन ने उनके भवन पर आक्रमण नहीं किया है, तब ऊपर के बरामदे से मुँह बढ़ा कर उन्होंने पूछा—"मामला क्या है! यह कौन है!"

गम्भीरता से शुरू से आखिर तक सब किस्सा कह सुनाया। सुनकर 'सबोआ' बोले—"जाओ अभी उन सबको पकड़ लाओ!"

पूरा हुक्म जुबान से निकलने के पहले ही पचीस-एक आदमी दौड़ पडे और होटल से सबके सब आदमियों को पकड लाये;—कौन जाने अगर चुन-चुन कर आदमियों को लाने पर असल आदमी ही न लाया जाय!

'सबोआ' फैसला करने बैठ गये। ली ने कहा—"ला-टी मेरी पत्नी है।"

साई ने बात काट कर कहा—"झूठ बात है! ला-टी मेरी पत्नी है!"

ला-टी से पूछने पर वह बोली—"साई को मैं नहीं जानती—ली ही मेरा पति है।"

यह बड़ी समस्या की बात है! ला-टी सचमुच किसकी पत्नी है, यह फैसला करना सहज बात नहीं। 'सबोआ' बहुत घबराये। बूढे की भवें तन गई। फैसला क्या होता है, यह सुनने के लिये सभा भर के लोग स्तब्ध बैठे रहे।

'सबोआ' उठ कर खडे हो गये—चहल-क़दमी करते हुए सोचने लगे। एकाएक उनके चेहरे के भाव मे परिवर्त्तन हुआ। वे फिर बैठ गये। बोले—"बूढा आदमी ठहरा, चल-फिर कर भूख लग गई है। ऐ—जा—कुछ नाश्ता लेते आ!"

उसी क्षण सोने की एक थाली में फल और मिठाइयाँ आ गई। साई का छोटा बच्चा वहीं बैठा था, पहले उसके हाथ मे कुछ दिये बिना कैसे खाया जा सकता है? इसीलिये 'सबोआ' ने उसे बुलाकर एक मिठाई दी। वह खाने लगा। 'सबोआ' स्वय खाते हुए बीच-बीच में बच्चे की ओर देखने लगे। बच्चे ने जब मिठाई खा ली, तब सबोआ ने फिर उसे बुला कर पूछा—"और कुछ खाओगे?"

रेल पर

जाड़े के मौसम में दिल्ली मे बहुत रौनक है। वहाँ के एक सहपाठी का निमन्त्रण था और मैंने वादा किया था कि पूरे दस दिन वहाँ ठहरूँगा। इधर मामाजी मुझे कलकत्ता ले गये 'घुड-दौड' दिखाने के लिये। तीन दिन वहाँ बीत गये। फिर एक बङ्गाली मित्र मुझे जबरन मधुपुर में घसीट लाये। वे छोड नहीं रहे थे—जिद्द करने लगे दो-चार दिन ठहर जाओ। कलकत्ता होता एक बात थी, मगर इस गाँव-से मधुपुर में दो-चार दिन ठहरना मेरे लिये असम्भव था। और फिर मेरे दिल्ली के मित्र भी नाराज़ हो जाते। मैं उसी रात को बारह बजे स्टेशन पर हाजिर हो गया। ट्रेन दो बजे आने को थी। ट्रेन वहाँ दो मिनट ठहरती है। इधर-उधर करते ही तो छः सात मिनट बीत जाता है और अगर कमरे का दरवाज़ा बन्द रहे, तो प्लेटफार्म पर खडा ही रहना है। आखिर यही होना था—धक्का-मुक्की, चिल्लाहट से किसी तरह दरवाज़ा नहीं खुलवा सके, बल्कि कमरों के अन्दर से अंग्रेज़ी, बङ्गला, हिन्दी, तेलेगू भाषाओं मे गालियाँ आने लगीं। तीन-चार कमरों के दरवाज़ों पर जाकर यों ही भटका। इधर 'गार्ड' ने नीली रोशनी हाथ में ले ली। अब समय भी नहीं। आखिर घबरा कर—एक बन्द दरवाज़े के पास आकर अंग्रेज़ी में कहा—"मेरी पत्नी बहुत बीमार है। कहीं जगह नहीं मिल रही है। कृपया दरवाज़ा खोल दीजिये।" कमरे के अन्दर रोशनी जल गई, भरोसा पाकर फिर कहने लगा—"बहुत मुसीबत मे हूँ, कृपा कीजिये।" दरवाज़ा खुल गया, इधर गाडी भी खुल गई। 'पोर्टमैण्टो' हाथ मे लेकर मैं कमरे मे कूद पड़ा। कुली ने बिस्तर फेंक दिया।

तकलीफ नहीं होगी। दूसरी ट्रेन से चली आवेंगी। हाँ...रात भर स्टेशन पर पडा रहना है. ."

"The worst of these married men"—(विवाहित आदमियो में सबसे बुरी) कह कर खिड़की के बाहर मुँह फेर कर, वह जाने क्या बड़बडाने लगी—ट्रेन की आवाज से सुनाई नहीं दिया। मगर मैं समझ गया, वह क्या कह रही थी। उसने ससार के सब विवाहित पुरुषो को स्वार्थी कहा और फिलहाल, उनके सब पाप मेरे ऊपर लाद दिये। हाँ, अगर वाक़ई मेरी पत्नी होती और उन्हें उस परिस्थिति में छोड आया होता, तब तो शायद इन टिप्पणियों को चुपचाप हजम कर लेता और झगडने लायक मानसिक अवस्था नहीं रहती। मगर काल्पनिक प्रियतमा के इस सम्पूर्ण ख्याली खतरे के लिये मैं इतना सहने को तैयार नहीं था, इसीलिये जबान से निकल पड़ा—

"The worst of these modern girls is that they form hasty Judgments." (इन नई छोकरियों की सबसे बुरी बात है, बिना-सोचे समझे जल्दी से किसी परिणाम पर पहुँच जाना)

यह सुनते ही बडी तेज़ी से वह मेरी ओर घूम कर बैठ गई, उसका चेहरा देखकर मैं घबराया कि कहीं उबल न पड़े।

हाँ, एक बात मैं कहने को भूल गया हूँ। उस डिब्बे में उस युवती के सिवा और कोई नहीं था।

"Just what do you mean ?" (क्या मतलब ?)—वह बोली। उसका चेहरा लाल, आँखें फैली हुईं।

मैं बिस्तर खोल कर बेंच पर बिछा रहा था—सोने के लिये। कहा—"I mean just what I say!" (जो कुछ कहता हूँ, वही मतलब है)—कह कर लेट गया। मैंने कुछ लम्बा—चौड़ा

मगर अब गौर करने के लिये ज्यादा समय नहीं था। मेरी सह-यात्री युवती सुन्दरी अवश्य है, मगर उसके चेहरे पर नज़र पड़ते ही मेरे कलेजे का खून पानी होने लगा। समझ मे नहीं आया, मैंने क्या किया होगा। सोचा, रात की बातों से सिलसिला लगाकर अब वह उबल पडनेवाली है।

डरते-डरते पूछा—"क्या बात है?"

"Scoundrel!" (बदमाश!)

मै नाराज़ हो गया—सुबह-सुबह यह क्या! मैंने कहा—"Wake up! (जगिये, जगिये) ख्वाब देख रही हैं?"

"बेअदब! नीच!"

"खूब गालियाँ सुनाने लगीं। वाह भाई! आखिर बात क्या है?"

"How dare you?" (कैसे हिम्मत की?)

"आपका दिमाग खराब तो नहीं हो गया?"

"मै आपको पुलिस के हवाले कर दूँगी।"

"Much obliged (बडी दया होगी),...मगर मेरा अपराध?"

"मेरी कुरती-साडी वगैरा आपने क्या की?"

मैंने सोचा, कह दूँ—बेच कर खा डाली, मगर...बोला—"यह क्या? आपकी कुरती-साड़ी से मेरा क्या मतलब? अगर मै आपकी चोरी करता, तो क्या यहाँ बैठा रहता?..."

"मुझे बेवकूफ बनाने के लिये, आपने खिडकी से बाहर फेंक दी होगी!"

"शायद?..सिर्फ सन्देह पर आपने गालियाँ दे डालीं!..क्या सिनेमा देख-देख कर आपका दिमाग खराब हो गया है? कुरती-साडी का चोर मैं ही हूँ, यह आपने कैसे मान लिया?"

"डिब्बे मे आपके सिवा और कोई नहीं था"—

"आप क्या रात भर जागकर देखती रही थीं, कौन आया और

के चुनाव मे तथा और अनेक बातों में उसकी रुचि ऊँचे दरजे की मालूम होती है ; अगर उसका मिजाज़ कुछ मुलायम होता !

मैंने कहा—"आप नाहक मुझ पर सन्देह कर रही हैं। आपके साथ ऐसा अनुचित बर्ताव करने की कोई वजह नहीं है। आपके साथ मेरा कोई परिचय भी नहीं है ..सिर्फ सन्देह पर किसी सज्जन को इस तरह बदनाम नही करना चाहिये। जरा सोचिये तो, मैं क्यों ऐसा करने जाऊँगा...मैं आपको भरसक मदद दूँगा और इसके लिये आप ज़रा भी न हिचके।"

मैंने देखा, वह कुछ नर्म हो रही थी, मगर मुझ पर अभी तक विश्वास नहीं हो रहा है। शायद वह सोच रही थी—उसकी पैरिस क्रेप की साडी और ब्लाऊज़ मैंने अपनी पत्नी के लिये चोरी कर रख लिये हैं। इसीलिये मैंने अपना 'पोर्ट मैण्टो' खोल कर सामने रख कर कहा—"अगर आपको शक हो, तो आप देख लीजिये..."

तब वह बोली—"तब क्या चोर आकर ले गया ?"

"मेरा यही खयाल है .इसके सिवा और क्या हो सकता है ? क्या आपका सब सामान गायब है ?"

"जी हाँ, कुछ भी नहीं रहा—एक साड़ी तक नहीं !"

"ट्रेन खडी होने पर पुलिस से कहना चाहिये। फिर आपके लिये कम से कम एक साडी का बन्दोबस्त करना होगा। रुपया नहीं चोरी गया होगा ?"

दबे स्वर मे जवाब मिला—"सब गया...टिकट और सौ रुपया था..."

"खूब !"

"आपको ज़रूर आनन्द मिल रहा होगा ?...एक 'modern girl' (आधुनिक छोकरी) की मुसीबत देख कर .."

मैंने देखा, फिर उबलने जा रही है। मैं कुछ डरते-डरते बोला—

"आप जब साड़ी बदल रही थीं, तब वहाँ कोई मौजूद था ?"

वाह रे कमबख्त ! क्या खूबी है सवाल की !. .वह शायद इसकी गवाही चाहता है ?. .

युवती ने मुझसे कहा—"इस अहमक को चुप हो जाने को कहिये। मै चोर पकड़वाना नही चाहतीइसे। भगाइये, जल्दी भगाइये... नही तो . "

जमादार कहने जा रहा था—"देखिये..." मगर युवती ने डाँट कर कहा—"चुप रहो !"

बेचारा घबराकर चुप हो गया।

फिर युवती अग्रेजी मे जमादार को गालियाँ देने लगी—उसका मुँह उत्तेजना से लाल हो गया था। जमादार सब बाते न समझने पर भी कुछ-कुछ अवश्य समझ गया था। वह आहिस्ते-आहिस्ते पीछे हट कर, डिब्बे से उतर कर नौ-दो-ग्यारह हो गया।

युवती मुझसे बोली—"क्यों उस अहमक को पकड़ लाये ! क्या तमाशा देखने के लिये ?"

"क्यो मुझ पर नाराज़ हो रही हैं ? मेरा क्या क़सूर है ? मैं उसे वैसे सवाल करने को कह कर नहीं बुला लाया था। और पुलिस को सब तरह के सवाल करने का हक़ है,—उन लोगों की जाँच करने का एक नियम है। हम लोग उनके सवालों को अनुचित समझ सकते हैं, मगर शायद हम लोगों के जवाबो से कुछ पता पाकर वे लोग अपना काम शुरु करते है, इसीलिये.. "

"मजाक करने लगे !" युवती बोली। आँखे फैली हुई थीं।

बहुत कठिनाई से हँसी रोक कर अपने चेहरे मे गम्भीरता लाकर बोला—"नहीं, नहीं, मजाक क्यों करूँगा ? आप इस तरह न सोचिये। मै सिर्फ इस आदमी के बारे मे निष्पक्षता से कह रहा था।"

इतने मे तीन पुलिस वाले लेकर और एक दूसरा जमादार हाज़िर

सहसा मुझे खयाल हुआ कि उसने अभी तक मुँह-हाथ नहीं धोये हैं। ब्रॉक्स से साबुन और तौलिया निकाल कर बोला—"आप मुँह धो लीजिये। मैं भोजन का बन्दोबस्त कर रहा हूँ।"

"धन्यवाद", कह कर सुलोचना 'बाथ रूम' मे चली गई। मैंने कलेवे का आर्डर दिया।

भोजन आ गया। वह भी 'बाथ रूम' से निकली। भोजन के पश्चात् उसका मिजाज कुछ ठण्ढा पड़ा। धोती और दुशाले में वह सुन्दर दीख रही थी।

वह बोली—"खैर, किसी तरह आबरू बच गई, नहीं तो यह 'Sleeping suit' (सोने की पोशाक) पहिन कर मैं कैसे बैठी रहती—कैसे दिल्ली स्टेशन पर उतरती?"

"हाँ " मैं बोला—"अब आप सनातन-पन्थी स्त्री मालूम हो रही हैं। देखने पर कोई सोच सकता है कि आप मथुराजी तीर्थ के लिये जा रही हैं।"

मेरे मज़ाक का कोई जवाब न देकर वह बोली—"खैर, घर पहुँच जाऊँगी।"

देखा, कुछ करने लायक काम न रहने पर उसका समय नहीं बीत रहा है। अगर उसे समय मिल गया, तो मेरी 'पत्नी' के बारे में बातें छेड़ देगी। मैं नहीं चाहता था कि ज्यादा झूठ बोलना पड़े। बक्स से एक उपन्यास निकाल कर, उसको देकर कहा—"इसे पढ़िये।"

सुलोचना के चेहरे पर कुछ मुस्कराहट आई। बोली—"धन्यवाद! आप विवाहित हैं, इसका इन छोटे-मोटे कामों से साफ पता चल जाता है।"

मैंने मन ही मन कहा—'खाक पता चल जाता है। तुम्हारी अक्ल ऐसी न होने पर पहिनने की साड़ी और कुरती चोर चोरी कर भाग जाता।'

को देखा था—मेल-जोल हुआ था, सभी की तस्वीरें एक-एक कर अंकित हो उठीं और फिर लोप हो गईं। फिर मुझे मालूम हुआ, मानो पास सोई यही युवती ही असलियत है—वास्तविकता है, और सब स्वप्न।...मेरे हृदय में इतनी ज़्यादा धड़कन होने लगी कि मैं डर गया! जबरन आँखें फेर कर खिड़की के बाहर कर ली।...मगर मानस-पट पर उन निद्रित ओंठों की मुस्कान नाचने लगी .फिर मुझे घूम कर बैठना पड़ा।. बाल बिखरे हुये हैं, हवा से दो-चार बाल माथे पर झूल रहे हैं। मुझे इच्छा हुई कि हाथ से हटा दूँ।. फूल-सा सुन्दर शरीर नींद से स्थिर था; सिर्फ छाती के कम्पन से जीवन का पता मिलता था। मुझे खयाल हो रहा था, जाने कितनी कोमल—मानो एक फूल! जरा-से आघात से टूट पड़ेगी।

उसकी छाती पर से खुली हुई किताब हटाकर, उसका लटका हुआ हाथ उठाकर, उसके बगल में रख दिया। कितना नरम हाथ था! उस हाथ को मुट्ठी के अन्दर रख कर बैठे रहने का दिल कर रहा था!

(४)

पाँच बजने लगा। आसमान बादल से घिरा हुआ था इसलिये पृथ्वी अँधेरी-सी—मानो सन्ध्या हो गई है—मालूम हो रही थी।. खिड़कियाँ एक-दो के सिवा सब बन्द थीं, फिर भी—काफी ठण्ढ मालूम हो रही थी। मैंने कम्बल खोलकर सुलोचना के शरीर पर डाल दिया।

एक स्टेशन पर ज़ोर से धक्का देकर ट्रेन के खड़े होते ही उनकी नींद टूट गई। वह उठ बैठी। बगल की खिड़की से मुँह निकाल कर एक हाथ से अपने बाल सम्हाले; फिर शरीर पर के कम्बल पर निगाह पड़ते ही चौंक पड़ी और मेरी ओर ताक कर बोली—"मेरे शरीर पर कम्बल कैसे आ गया?"

मैंने, मानो सुन नहीं पाया हूँ—ऐसा भाव दिखा कर, किताब के पन्ने पर आँखें गड़ा रक्खीं।

"सज्जनता के लिहाज से। आप मेरी मेहमान हैं। इसके सिवा आप ही को केवल फायदा नहीं हुआ है—आपका संग पाकर क्या मुझे कोई फायदा नहीं हुआ ?"

सुलोचना सहसा हँस कर बोली—"क्या फायदा ? मेरी संगति का लाभ ? आपकी पत्नी यह बात सुनकर कभी खुश नहीं होगी !"

हाय, हाय ! मैं बिलकुल भूल गया था ! अब क्या करूँ ? काल्पनिक पत्नी को विदा न करने पर वास्तविक प्रियतमा को पाना असम्भव है। मैंने कह डाला—"देखिये ! ..आपसे अब तक मैं छल कर रहा था—झूठ कह रहा था। मैं अविवाहित हूँ. ."

वह चकित होकर मेरे चेहरे की ओर देखकर बोली—"तब कल रात को प्लेटफार्म पर किससे बातें कर रहे थे ?"

"किसीसे नहीं !. जाने कैसे यह सब हो गया ! जब आप मेरी पत्नी के बारे मे जिरह करने लगीं, तब मुझे झूठ-मूठ बनानी पड़ी। इसके सिवा..."

"हाँ-हाँ, कहिये।"

उसके स्वर में ऐसी ठण्टी कठोरता थी कि मैं डर गया। बहुत कठिनाई से कहा—मुझे कुछ कहना नहीं है।...मेरी पत्नी न रहते हुए भी जब उसीकी दुहाई देकर ट्रेन पर सवार हुआ, तब मैं नहीं जानता था कि मेरी सहयात्री एक स्त्री है; फिर जब सुबह मैं आपने सब बातें कह कर क्षमा माँगने के लिये सोच रहा था, तब चोरी की घटना ने मुझे कहने से रोक दिया। उस समय यह कहने पर आपका सन्देह और ज्यादा हो जाता। इसीलिये मुझे कहने का मौका ही न मिला। मुझे क्षमा कीजिये..."

"क्या आप जानते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा बेवकूफ बनाये जाने से घृणा करती हैं ? और उससे कहीं ज्यादा, उपहास को . ?"

अब उसका चेहरा पहले की तरह भयानक था ! मेरा स्वप्न जाने

दूसरे दिन सुबह एक पहाड़ी नौकर ने आकर मुझे धोती और ओवरकोट लौटाया। एक लिफाफा भी उसने मुझे दिया। उसके अन्दर इक्कीस रुपये का एक 'चेक' और एक चिट्ठी सुलोचना देवी की लिखी थी।

चिट्ठी का कुछ अश था—

"—आप अविवाहित हैं, यह आपके डिब्बे में आने के बाद ही समझ गई थी। आप चलती हुई ट्रेन पर सवार हो रहे थे, यानी आपकी पत्नी और सामान के होने पर उनके आने की कोई सम्भावना नहीं थी, यह आप जानते थे ;. इसलिये पत्नी को छोड़ आने की इच्छा न रहने पर उस हालत में लोग ट्रेन छोड़ देते हैं, पत्नी नहीं छोड़ देते। फिर आपका अभिनय ऐसा अस्वाभाविक था कि कोई भी आपका छल ताड़ जाता। और आपके 'पोर्ट मेण्टो' का सामान देख कर तो आप अविवाहित हैं, यह खयाल पक्का हो गया।

दूसरे दिन जब मेरी चोरी हो गई, तो मैंने आप पर सन्देह किया था। इसमें मेरा क़सूर बहुत कम है। आप ही सोचिये।

बड़ी मेहरबानी होगी अगर आप आज शाम को मकान में पधारें।

आपसे मिलने की वजह यह है कि ट्रेन पर आपने मेरी बहुत खातिर की थी और मैंने आपका अपमान किया था—इसका प्रतिदान होना चाहिये। अगर आप आवें, तो मैं बहुत सुखी होऊँगी।

आपकी—

सुलोचना देवी।"

मैं शाम को गया। सुलोचना बाग में थी। मुझे देखते ही नमस्ते करती हुई बोली—"आपकी पत्नी आई ?"

हाथ मिलाने के छल से उसका हाथ पकड़ कर बोला—"नहीं, अभी तो नहीं; मगर जल्दी आ जायँगी।"

उसके गुलाबी कपोल और भी गुलाबी हो उठे।

जाती थी। लड़की सुन्दरी है, तिस पर उसे उच्च शिक्षा भी दी जा रही है, इससे वे खुश थे—उन्हे बहुत सन्तोष था, और मन ही मन एक ऊँचे पद के प्रतिष्ठित वर के साथ उसकी शादी की कल्पना किया करते थे। Finance और I. C S. वगैरा का परीक्षा फल-निकलने पर, कायस्थों के नाम-पते मँगवाकर, लड़की के लिये कोशिश करते थे। मगर ऐसा वर नहीं मिला। आखिर एक डिप्टी कलेक्टर विधुर वर मिले और वे शान्ता से बहुत ख़ुशी के साथ शादी करने के लिये राज़ी हुए। उसकी उम्र कोई ऐसी ज्यादा नहीं थी और कोई औलाद भी न थी। मगर शान्ता ने उनसे शादी करने से इनकार किया और बिना खाये-पिये बिस्तर पर लेट कर रोती रही। लड़की राज़ी नही देख कर बातचीत बन्द करनी पडी। आखिर मे सुशीलकुमार के साथ उसकी शादी हुई।

नहाकर कमरे मे आकर, बडे आइने के सामने तौलिये से फिर से सिर और मुँह पोंछ कर शान्ता ने बालों मे कघी की। फिर बराडे में आई और नौकरानी से बोली—"महाराज से खाना परोसने के लिये कहो।"

भोजन के पश्चात् पान चबाते-चबाते शान्ता आज ही की डाक से आये हुए एक मासिक पत्र को हाथ मे लेकर सोफे पर लेट गई। पहले उसने सूची देखी, फिर यों ही सब पन्ने उलट कर देख गई। फिर एक कहानी पढ़ने लगी। पति-प्रेम से वञ्चित एक युवती कैसे एक युवक को प्रेम करने लग गई, इसका वर्णन था। कुछ दिन के पश्चात् पत्नी के सतीत्व पर पति को सन्देह हो गया। तब वह पुराने खयालात के छोटे मन का पति कभी-कभी बेवक्त घर आकर छिपे-छिपे देखता था कि पत्नी क्या कर रही है। यह सब देख कर पति पर पत्नी की घृणा होने लगी और वह सामाजिक नियम पर नाराज हुई। आखिर एक दिन एक लम्बी चिट्ठी लिख कर पति के बिस्तर पर रख कर, प्रेमी के साथ चली गई।

के कमरे मे आलमारी'पर रक्खा रहता है। जब दफ्तर जाते हैं जेब में रख कर ले जाते हैं। सोने के कमरे में जाकर, गुच्छा र दो-तीन कुञ्जियाँ ताले में लगाते ही ताला खुल गया।

सन्दूक के अन्दर से कुछ पुराने कपड़ों के नीचे रेशमी रूमाल मे हुआ चिट्ठियों का एक बंडल निकला। किसी भी चिट्ठी का ाफा नहीं था। किसी औरत के सुन्दर हस्ताक्षर मे चिट्ठियों के खेर मे लिखा था—'तुम्हारी सदैव—मनोरमा।'

रूमाल के साथ चिट्ठियों का बंडल लेकर, बैठने के कमरे में जाकर 'सोफे' पर बैठ गई। चिट्ठियो को गोदी में रख कर सोचने लगी— चिट्ठियाँ पढ़े या नहीं।

जाने किसकी चिट्ठियाँ हैं! ..मगर पति के सन्दूक में और किसकी ट्ठियाँ रहेगी?—पर दूसरे की चिट्ठियाँ पढना क्या उचित है? . पर तो दूसरा नहीं—पति तो उसके हृदय का मालिक है। दोनों के ही हृदय, एक ही आत्मा है—सिर्फ शरीर ही अलग है। तो फिर की चिट्ठियो पढ़ने मे कोई हर्ज़ नहीं।

मन ही मन इस तरह बहस कर, बीच मे से एक चिट्ठी लेकर पढने ी।

चिट्ठी का प्रारम्भ पढ़कर शान्ता का सिर चक्कर खाने लगा। ! यह तो बिलकुल प्रेम-पत्र है! चिट्ठी की तारीख देखी, तो मालूम ा—उसकी शादी के पहले की तारीख है। चिट्ठी की भाषा मे ती नहीं थी—किसी शिक्षित लड़की का हस्ताक्षर था। तब क्या दी के पहले पति किसी से प्रेम करते थे? हाय! यह क्या...!

पूरी चिट्ठी पढते-पढते उसका सिर बहुत दर्द करने लगा। और चिट्ठी लेकर पढने लग गई। चिट्ठी से दोनों मे गहरा प्रेम टपक ा था। मनोरमा के माँ-बाप शादी करने को राजी होंगे या नहीं इस दोनों को बहुत घबराहट थी।

खिचड़ी खायगी। काफी दुबली हो गई है। सुशीलकुमार ने उसका मुँह धुला कर दवा पिलाई है। खुली खिड़की के पास 'सोफा' खींच कर दो-तीन तकिये के सहारे शान्ता को बैठा दिया है। आप उसके पास कुरसी पर बैठ कर उससे बातें कर रहे हैं।

नौ बजने पर शान्ता कुछ गम्भीर स्वर से बोली—"क्या आज भी दफ्तर नहीं जाओगे?"

"मैंने दो महीने की छुट्टी ले ली।"

"क्यों?"

"मैं अब कानपुर में रहना नहीं चाहता। मैं देहली में अपनी पुरानी जगह पर काम करूँगा। बड़े साहब को भी मन्जूर है।...और फिर दो महीनों के लिये छुट्टी इसलिये ले ली...बहुत दिनों से मैंने छुट्टी नहीं ली थी. तुम्हारी तबीयत कुछ अच्छी हो जाने पर मसूरी चलूँगा। देहली जाना भी तय है.."

शान्ता कुछ थके स्वर में बोली—"क्या, तुम्हारी मनोरमा देहली में रहती है?"

सुशीलकुमार आश्चर्य में होकर बोले—"मेरी मनोरमा?—मेरी मनोरमा कौन है? तुम किसे कह रही हो?"

शान्ता पति की ओर न ताककर और थके स्वर से बोली—'अरे.. वही मनोरमा—तुम्हारी प्रेमिका! आजकल वह तुम्हें चिट्ठी नहीं लिखती है क्या?...हाँ...तुमने शादी कर ली है, इसलिये क्या मनोरमा तुम पर नाराज़ हो गई है?"

सुशीलकुमार बोले—"यह सब क्या बक रही हो? मनोरमा नाम को कोई भी मेरी प्रेमिका नहीं थी—और कोई भी मुझे चिट्ठी नहीं लिखती है।"

शान्ता बोली—"शादी के बाद मैंने तुमसे कितनी बार पूछा था—'क्या तुमने मेरे सिवा और किसी को कभी प्यार किया है?' तुमने

"जो रावलपिंडी में नौकरी करते हैं ?"

"हाँ वही। क्या तुमसे नहीं कहा था कि वह इलाहाबाद में ट्यूशन करते थे और एम० ए० मे पढते थे ?"

"कहा होगा "

"क्या तुमसे नही कहा था कि वह जिस लडकी को पढाता था, उससे उसका प्रेम हो गया था और शादी भी करना चाहता था, मगर लडकी के माँ-बाप ने शादी नही की और सन्तोष के पिता ने उसकी एक दूसरी लडकी से शादी की ?"

"हाँ, कहा तो था।"

"यह भी तुमसे कहा होगा कि यहाँ डी० ए० वी० स्कूल में मास्टरी की जगह खाली होने पर, वह मेरे मकान मे आकर ठहरे थे—उस समय तुमसे मेरी शादी नहीं हुई थी।"

"यह बात तो मुझे याद नहीं है।"

"यह सन्दूक उन्हीं का है। जब यहीं थे, तभी देहली मे एक नौकरी का पता लगा था। इसे यहीं रखकर चले गये। मैं इसे पार्सल कर भेजना चाहता था, मगर उन्होंने मुझको लिखा कि वह रावलपिंडी जाने वाले हैं, और सन्दूक मे कोई खास जरूरी चीजें नहीं—फिर कभी ले जाएँगे।"

शान्ता चुप रही। फिर एक लम्बी साँस लेकर बोली—"अच्छा ! यह बात है...।"

सुशीलकुमार बोले—"इसे तुमने कैसे खोल डाला ?—इसकी कुञ्जी तो हम लोगों के पास नहीं थी।"

शान्ता बोली—"हाँ, तुम्हारे दफ्तर के गुच्छे मे तो थी। मैंने सोचा था कि शायद कभी मैं उसको खोल न डालूँ, इसी डर से तुमने [illegible] को नहीं रक्खा।"

शाम को

मैंने पारसाल दारजिलिङ्ग में यह कहानी सुनी थी :—

बहुत दिन पहले की कहानी है। यहाँ की भुटिया बस्ती में एक अंग्रेज धर्म-प्रचारक आकर रहने लगे थे। उनको भुटिया लोग बहुत मानते थे—खास करके भुटिया बच्चे।

भुटियो की मुसीबत में यह अंग्रेज धर्म-प्रचारक हर तरह मदद देते थे। किसी के बीमार पड़ने पर दवा और सेवा, करते थे—उन्हे बुलाने की ज़रूरत नही थी। वे हर एक को इतना प्यार करते थे, कि उसके सामने माँ-बाप का स्नेह भी तुच्छ था।

उन धर्म-प्रचारक का कोई नहीं था। भुटिया लोग ही उनके सब कोई थे। सिवाय उन लोगों के और किसीकी चिन्ता उन्हे थी ही नही। भुटिया बस्ती मे जहाँ भी जो कुछ हो, साहब को सब कुछ मालूम हो जाता था, और छोटा-बड़ा कोई भी अनुष्ठान वहाँ हो—उसमें उनका दान या सलाह रहती ही थी। कहीं झगडा होने पर उन्हीं को बुलाया जाता था और विवाह के समय उनका निमन्त्रण सब से पहले होता था।

भुटिया बच्चे उनको हृदय से भी बढकर थे। उन बच्चों को गोदी मे लेकर, पीठ पर चढाकर, कँधे पर लेकर, सिर पर बैठाकर, उन्हे हँसाकर, रुलाकर भी उन्हे सन्तोष नहीं होता था। वे सुन्दर या बदसूरत का ख्याल नहीं करते थे—उन्हे बच्चो से मतलब था। सड़क पर से गन्दे, गर्द से भरे हुये बच्चों को उठाकर, गोद मे ले लेते थे और प्यार से चुम्बन करते थे। उनके हृदय मे घृणा नहीं थी। कभी-कभी वे बच्चों को अपने मकान मे लाकर अपने हाथ से उन्हे नहलाते थे, सड़क

वाले थे। वे सब मिलकर ऐसी धक्का-मुक्की करने लगे कि दरवाज़ा टूटने लगा।

साहब ने देखा, सीधी तरह वे नहीं मानेंगे। उन्होंने खिडकी से मुँह निकालकर बच्चों को धमकाया। बच्चे जरा घबरा गए, फिर कोई डबडबायी आखों से, कोई रोनी सूरत बनाकर, कोई करुण दृष्टि से साहब की ओर ताकते हुए आहिस्ते-आहिस्ते चले गये।

बच्चों को भीतर न आने देने का यही कारण था कि आज के उत्सव के लिये वे स्कूल के कमरे को नये ढग से सजा रहे थे—सध्या की अँधेरी मे बच्चों को चकित कर देने के लिये। इसलिये इस उत्सव को सुबह से शुरू न करके शाम से शुरू करने का निश्चय किया था। नकली पेड-पौधों से कमरे को इस तरह का एक बाग बना रहे थे कि बच्चे देखते ही आश्चर्य-चकित हो जायँ। दिन की रोशनी मे यह वैसा सुन्दर नहीं दीखेगा, इसीलिये वे सध्या की प्रतीक्षा मे थे। बच्चों के इस समय कमरे मे आने से सब बरबाद हो जायगा—सोच कर उन्होंने उन्हें भगा दिया। इसके लिये उनके हृदय मे गहरी वेदना चुभ कर रह गई।

सारे दिन वे कमरे की सजावट मे लगे रहे। खिडकी से वे कभी-कभी देखते थे, तो बच्चे मलिन मुँह बनाकर आस-पास घूमते दीखते। आज उनका किसी भी खेल मे मन नहीं लग पाता था। उनके जीवन का सभी आनन्द लुट-सा गया है—ऐसा ही उनके चेहरो का भाव था।

साहब बार-बार खिडकी से आसमान की ओर देख रहे थे—कितनी देर मे दिन की रोशनी मन्दी होती है।

शाम हो गई थी। वे कमरे से निकल आये—बच्चो को घर कहने के लिये कि, ~ ~ ~ के लिये तैयार हो कर आवें।

साथ प्रतीक्षा करने लगे। अब वे घर से निकल पड़े हैं!.. अब आधी राह पर पहुँच गये हैं। अब पास ही होंगे।...वे उठकर किवाड़ के पास खड़े हो गये। मगर कहाँ ? कोई भी नहीं आया।...

खड़े-खड़े वे प्रतीक्षा करते रहे। एक-एक क्षण उन्हे एक घण्टा-सा मालूम होने लगा और उनकी व्याकुलता और भी बढने लगी। आने का समय भी बीता जा रहा है, फिर भी वे क्यों नहीं आ रहे हैं ? उनके हृदय मे कोई कहने लगा, वे अभिमान से दु:खित होकर चले गये हैं, और नहीं आवेंगे और नहीं आवेंगे।

सहसा एक ज़ोर का हवा का झोंका दरवाज़े को धक्का देकर चला गया। कमरे की छत की टीन ने आवाज की। दीवाल पर से फूल के हार जमीन पर गिरने लगे। दरवाजे और खिड़की के छेदों से ठढी हवा आकर उनके शरीर को थरथरा देती थी।

कमरे के बाहर सहसा पैर की आहट, कोई अस्फुट ध्वनि सुनाई दी। उन्हे ख्याल हुआ कि कोई फिसफिसाकर बातें कर रहा है। आहिस्ते से, आवाज़ न करते हुए आ रहा है। मगर कमरे के अन्दर कोई नहीं आ रहा है। यह अवश्य बच्चों का अभिमान है, अभिमान का मौन तिरस्कार है।

साहब झट उठकर, दरवाज़ा खोलकर उन लोगों को पकड़ने के लिये जा रहे थे, मगर दरवाजा नहीं खोलना पड़ा, तूफान का जोर का धक्का दरवाजे पर लगते ही वह आप ही आप खुल गया।.. कोई बड़े वेग से कमरे मे घुस आया। मोमबत्ती बुझ गई, फूल के हार टूट कर इधर-उधर उड़ने लगे, सब सजावट उलट-पलट कर जाने क्या होने लगी।

साहब ने बहुत कोशिश की, मगर रोशनी नहीं जली, मानो किसी की फूक से बुझ जाने लगी। बाहर उस समय भी बातों का स्वर सुनाई

माँ

इस एक मात्र लड़के को जन्म देकर जब से मिसेज़ मैकोहन बीमार पड़ीं, तब से पिता के स्नेह से वंचित इस बच्चे की भविष्य-चिन्ता से वह घबराई हुई रहने लगीं।

गुलजान बच्चे की नौकरानी थी। वह अपने साँवले हाथों पर फूल से सुन्दर शिशु को लेकर, एक लोरी गुनगुनाते हुये बराडे में चहल-क़दमी कर रही थी।

मिसेज़ मैकोहन बुखार से गर्म ललाट पर गर्म हाथ रगडते हुये लम्बी सास फेंक रही थीं। उनका कितना प्यारा बच्चा है! मगर वे एक दिन के लिये भी उस तरह से गोद में लेकर उसे प्यार नहीं कर सकीं। इस दुःख से वह मन ही मन पागल हो रही थीं।

बच्चा सो गया था। गुलजान उसे झूलना मे बिस्तर पर लिटा कर, सावधानी से मच्छरदानी से ढाँक कर मिसेज़ मैकोहन के कमरे में गई।

तीन साल से—शादी होने के बाद जब से मिसेज मैकोहन हिन्दुस्तान मे आई थीं तब से—इस परदेशी साथी गुलजान की सेवा और आन्तरिक प्रेम से वे मुग्ध हो गई थीं। उनके साथ मालकिन और नौकरानी का सम्बन्ध नहीं था। वह सखी की तरह थी। मर्ज जितना ही बढ़ रहा था, उतना ही मिसेज़ मैकोहन अपने जीवन से निराश हो रही थीं। पति अब प्यार नहीं करते थे, और वे अच्छी तरह से समझ रही थीं, कि वे उनकी मृत्यु के लिये अधीर हो रहे हैं। अपने बच्चे के लिये मिसेज मैकोहन को गुलजान पर बहुत ज्यादा निर्भर रहना पड़ रहा था।

न जाने क्यों, जोज़ेफ के जन्म-दिन से ही केप्टेन पर गुलजान का ... हो गया था। एक अनाथ बच्चे पर मनुष्य की जितना ममता ..., उनको अपनी सन्तान पर उतनी भी नहीं थी। पत्नी पर प्रेम ... के कारण ही ऐसा व्यवहार है।

... खाह बढ़ने की वजह से गुलजान ने अपने को खुश नहीं ...। जोजेफ को वह पा गई है, इसीलिये वह बहुत खुश थी।

... क साल बीत गया। जोजेफ और अदुब्ल ये दो अलग-अलग ... के बच्चे एक ही स्नेहमयी गोद में, एक ही साथ, चन्द्र-कला की ... बढ़ने लगे। एक तरुवर जैसे दो कोमल लताओं को स्नेह के ... सम-भाव से अपने हृदय से जकड़ कर रखता है, गुलजान का ... भी उसी तरह अपने बच्चे में और जोज़ेफ में कोई भेद नहीं ... था।

... केप्टेन साहब ने मेजर लरी की पत्नी के साथ जोजेफ को पहाड़ ... दिया। गुलजान भी अब्दुल को लेकर साथ गई।

... हाड़ से लौटने के दिन मिसेज़ लरी ने केप्टेन मैकोहन की शादी ... ने के बारे में कहा और बोली—"केप्टेन ने तुम्हें पहले कहने ... किया था, इसीलिये इतने दिनों तक मैंने तुमसे नहीं कहा।"

... गुलजान का चेहरा छोटे घर के हिन्दुस्तानियों की तरह काला ...। उसका साँवला चेहरा सहसा पीला दीख पड़ा। घर पर ... माँ आई है। अगर वह उसकी गोदी से जोजेफ को छीन ले? ... न से उतरने के समय उसके पैर काँप रहे थे। बच्चे को जोर से ... में दाबे हुए वह चिन्तित भाव से उतरी थी।

... टेशन पर मालिक या मालकिन से साक्षात् नहीं हुआ। बँगले पर ... पर, बराडे में उसने केप्टेन के साथ नई पत्नी को देखा। नई ... न सुन्दरी तथा स्वस्थ थी। पहली दृष्टि में ही वह उनकी पोशाक ... चेहरे से उन पर नाराज़ हो गई। वह सोचने लगी—'उन मेम

मैकोहन ने गम्भीर स्वर से कहा—"इस बदमाश लड़के को इस कदर तुमने बरबाद किया है कि बहुत जल्द ही डाकुओं के दल मे शामिल होगा। बस, और नही !...अब मैं उसे सुधारने का भार लूँगी।"

गुलजान खडी रह कर सब बाते सुनकर चली गई, मगर कुछ क्षण में ही वह अपने व्यवहार का नतीजा, एक अशुभ खतरे की छाया, समझ गई। बच्चे को पुराने नौकर फेदू के पास रख कर, उनके हाथ मे एक मिसरी का टुकड़ा देकर, डरते-डरते मालकिन के कमरे मे जाकर उसने आंसू भरी आँखो से कहा—"मेम साहब ! अपने व्यवहार के लिये सचमुच मुझे दु'ख हो रहा है। मेहरबानी कर मुझे माफ कर दे और कभी मैं इस तरह नहीं करूँगी। उस बच्चे को मै बहुत प्यार करती हूँ, इसलिये एकाएक मे नाराज हो गई थी ! हम लोग छोटे घर के मूरख हैं—हमारी बात पर ध्यान न दे..."

मिसेज़ मैकोहन अच्छी तरह से हिन्दी जबान नहीं समझती थीं, फिर भी वह जो कुछ समझ सकी उससे उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे स्थिर स्वर से बोली—"तुमको तन्खाह देती हूँ...तुम अभी चली जाओ...लड़का तुम्हारा नहीं है...मै उसे आज से सीधे रास्ते पर ले जाने की कोशिश करूँगी।"

गुलजान की आँखों के चारों ओर अँधेरा दीखने लगा। सहसा वह पगली की तरह मालकिन के पैरों के पास बैठ गई और मार्मिक स्वर से बोली—"मेम साहब ! मुझे न निकालिये। मेम साहब से मैंने कसम खाई थी कि उनके लड़के को छोड़कर नहीं जाऊँगी। या तो मुझे रखिये, नहीं तो मेरे बच्चे को मेरे साथ जाने दीजिये।"

मिसेज़ मैकोहन घृणा के साथ हँस पड़ी। केप्टेन साहब ने गुलजान की आंसू-भरी गम्भीर आवाज़ सुनकर कमरे के किवाड़ से झुक कर पूछा—"क्या बात है, क्लेरा ?"

"यह बात सच है...मगर लोग क्या कहेंगे ?" कह कर मिसेज़ मैकोहन का विवेक इस निर्दय युक्ति के विरुद्ध जागरित हो उठा।

एक मुसलमान औरत दोनों कधों पर, दो एक ही उम्र के बच्चे—एक सफेद यूरोपियन और दूसरा मुसलमान, लेकर भाग गई है। इन लोगों को पकड़वाने पर पुरस्कार दिया जायगा। इसी तरह का एक विज्ञापन अख़बार मे छपाया गया। मगर कोई फायदा नही हुआ। गोरे, साँवले और काले रग के लड़कों को गोदी मे लेकर कितनी ही औरते सडक पर घूमती नज़र आई, मगर सफेद लडके के साथ कोई औरत नहीं दीखी।

(३)

गुलजान इलाहाबाद से भागकर पैदल कानपुर आ गई। वह अपने भाई के पास ठहरी।

इसके बाद सोलह साल बीत गये...

अब्दुल अब सुन्दर और ताकतवर नौजवान है। अब वह मामा के किराये के तागे के व्यापार मे साझेदार है। गुलजान अभी तक उसके लिये कठिन से कठिन परिश्रम करने मे नहीं थकती थी। वह माँ की तरह नहीं, बल्कि नौकरानी की तरह उसकी सेवा करती थी। लडका भी माँ के सिवा और किसी को जानता नहीं था। अभी तक वह माँ की गोदी का बच्चा था...उसी तरह प्यारा।

अब्दुल अपने काम में काफी तरक्की करने लगा। उसके अन्दर क्या खूबी थी यह वह नहीं जानता था, मगर उसने अच्छी तरह से लक्ष्य किया है कि उसके चेहरे की ओर ताक कर उसकी अग्रेज सवारियों की आखों मे विस्मय तथा करुणा के भाव जाहिर होते हैं और किराया कुछ ज्यादा मिल जाता है। और यह भी एक विचित्र बात थी कि उन अच्छी पोशाक पहिने सफेद स्त्री पुरुषों को

तुम्हारे बाप तुम्हारी अम्मा को नहीं चाहते थे। तुम्हारे ऊपर भी उनकी मुहब्बत नहीं थी। तुम्हारी अम्मा ने मरने के पहले ही मुझे कसम खिलाई थी कि जब तक मैं जिन्दा रहूँ, तुम्हे छोड़कर नहीं जाऊँगी।"

फिर वह बहुत धीमे तथा करुण स्वर से उन लोगों के भागने का क़िस्सा सुनाने लगी। सुनकर अब्दुल कुछ भी न बोला। मानो एकाएक एक पत्थर की मूर्त्ति बन गया था।

गुलजान कहने लगी—"मैंने सुना, हम लोगों को पकड़ने के लिये अख़बार में नोटिस छपाया गया है। पकड़े जाने पर क्या हाल होगा, यह मुझे मालूम था। मेरे सिर पर पहाड़ गिर पड़ा। एक गाव में कई दिन छिपी रही। वहाँ एक फ़कीर रहता था। मैं रोकर उनके पैर गिरी। उन्होंने कहा—'दोनो के एक साथ रहने पर पकड़ी जाओगी। एक को छोड़ जाओ।' उन्होंने ठीक सलाह दी, मगर यह करना बहुत मुश्किल था। किसे छोड़कर जाऊँ? कहाँ रक्खूँ? विश्वास करने लायक ऐसा कौन है, जो इनाम की चाह से हम लोगों को पकड़वा न दे? मैंने तुम्हारी अम्मा की याद की। मैंने कहा—'मेरी समस्या हल कर दो। मैं अपने लड़के पर ममता कर, अन्धी होकर, तुम्हारे लड़के को फेंक न जाऊँ। उसकी सौतेली माँ बड़ी बेरहम है।' शायद तुम्हारी अम्मा ने बिहिश्त से मेरी बातें सुन लीं। उसी रात को फ़कीर के पास मैं अपने लड़के को रख कर, उनके कपड़े तुम्हे पहिनाकर और तुम्हारे बदन पर रङ्ग लगाकर गाव से निकल पड़ी। अब्दुल का धीमे स्वर से रोना रास्ते भर मुझे सुनाई दिया। बुख़ार से वह बेहोश था। मगर कसम से बढ़कर दुनिया में क्या है? बेटा...खुदा सब से ऊपर है। मैंने तुम्हारी अम्मा से कसम खाई थी। यहाँ आने के बाद ही मैंने चिट्ठी भेजी, मगर उसी रात को अब्दुल मर गया था। मैं तुम्हें ही अब्दुल समझती हूँ। तुम अब जवान हो गये हो.. तुम अपना रास्ता चुन लो। मगर. मुझपर इतनी

उसके किस्से की जाँच करने के लिये गुलजान को बुलायेंगे—तब ? और फिर...दूसरे के लडके—एक अँग्रेज़ के लडके को उसके पिता के मकान से चोरी कर लाने के लिये क्या उसका चालान नहीं करेंगे ? ओफ़, नही ! नही ! खुदा उसे इस भयानक लोभ से बचाये...

गहरे अँधेरे से चारो दिशायें ढँक गई थी। गरीबा के मुहल्ले की छोटी खिडकियो से मिट्टी के तेल की डिब्बियो की रोशनी टिमटिमा रही थी। चारो ओर सुनसान-सा लग रहा था। गुलजान दालान मे एक चारपाई पर चुपचाप बैठी हुई थी। अब्दुल गुलजान के पास आकर खड़ा हो गया। उसने अच्छी तरह से सोच लिया है कि गुलजान को फँसाकर, वह अपने को केप्टेन मैकोहन का लड़का साबित नहीं करने का—किसी तरह नहीं करने का।

राह मे दो अङ्गरेजो से उसकी भेट हुई थी। वे चलते-चलते सहसा उसकी तरफ देखकर चौककर खडे हो गये थे। वह भी कौतूहल से चले न जाकर, खडे होकर, दोनो आँखें उठाकर उन लोगों को देखने लगा था। एक अँग्रेज ने दूसरे के कहा था—"By jove ! जरूर यह लडका छद्मवेशी यूरोपियन है।" शेर की तरह गरजकर वह उन लोगों पर कूद पडा था और चिल्लाया था—"चुप रहो !"

दोनो अङ्गरेज़ हँसते हुए वहाँ से चले गये थे।

अन्धेरे मे कोई किसी का मुँह नहीं देख पाता था। रात की हवा बार-बार पछतावा भरी साँस-सी कोठरी मे बाहर-भीतर आ-जा रही थी।

धीमी आवाज़ मे गुलजान ने पुकारा—"अब्दुल ! बेटा जोजेफ !"

जोज़ेफ उसकी छाती पर सिर रखता हुआ बोला—' माँ !"

(२)

उस दिन सरोजिनी ने बरांडे से बड़ी घबराहट के साथ देखा कि ट्राम पर से उतरते हुए एक सज्जन पैर फिसलने से सडक पर गिर पडे। ट्राम पर के सब लोग चिल्ला उठे, मगर ड्राइवर ने और तेजी से ट्राम चला दी।

पत्थर पर सिर गिरने से बूढ़ा बिलकुल बेहोश हो गया था। चारों ओर से लोग इकट्ठा हो गये।

एक ने कहा—"अरे.. सिर से खून बह रहा है!"

दूसरा बोला—"मर तो नहीं गया?"

तीसरे ने कहा—"ऊँहूँ!"

चौथे ने कहा—"मरा नहीं है, मगर दम निकलने में देर ही क्या है! चलो . चलो! पुलिस आजायगी और फिर गवाही के लिये कोतवाली जाना पडेगा!"

बराडे से झुक कर व्याकुल आंखों से सरोजिनी देखने लगी, सभी हल्ला मचा रहे हैं, मगर किसीकी बूढे की सहायता करने की इच्छा नहीं है।

सरोजिनी से और खडा नहीं रहा गया। वह झट ऊपर से नीचे उतर आई।

भीड़ के अन्दर वह गई। बेहोश बूढे की ओर क्षण भर के लिये ताक कर सरोजिनी बोली—"क्या आप लोग इन्हें हमारे घर पर ले जायेंगे?...नहीं तो यह मर जायेगा.."

तीन-चार आदमी दौड़े हुए आये।

भीड के अन्दर किसीने फुसफुसा कर कहा—"यह बुड्ढा इसका कौन लगता होगा?"

और एक ने—"हुह! यह भी नहीं समझ सकते हो?"—कहकर एक अर्थपूर्ण इशारा किया। बहुत से लोग बड़ी ज़ोर से हँस पड़े।

“अच्छी तरह इलाज होने पर कोई डर नहीं है। नह ं तो खतरा है।”

मरीज के सिर पर पट्टी बाँध कर, नुस्खा लिख कर वे खड़े हो गये।

सरोजिनी ने डाक्टर के हाथ में फीस के रुपये दे दिये।

अँगुलियों से रुपयों का अनुभव करते हुये, सरोजिनी की ओर ताक कर डाक्टर बोले—“यह तुम्हारा कौन लगता है, बाई ?”

सरोजिनी सोच ही रही थी कि इसका क्या जवाब देना चाहिये, इतने मे डाक्टर बोले—“क्या यह आदमी तुम्हारी...”

डाक्टर क्या कहेगा यह पहले ही अन्दाज कर, उनकी बात खतम होने के पहले ही सिर हिलाकर सरोजिनी बोली—“नहीं. .नहीं...”

“तब क्या ?”

सरोजिनी ने सक्षेप में सब बाते कह सुनाई।

थोडी देर तक डाक्टर जाने क्या सोचते रहे। फिर उन्होंने कहा—“अच्छा. .देखो ! इन्हें कल सुबह ही अस्पताल भिजवा दो। वहीं ठीक ढङ्ग से इलाज हो सकता है, और सहसा कुछ गड़बड़ होने पर किसी पर कोई उत्तरदायित्व नहीं आयगा।

किवाड़ के पास खडी रहकर एक अधेड़ औरत डाक्टर की बातें गौर से सुन रही थी। अब सहसा कमरे के अन्दर आकर बोली—“मैं भी यही कहती हूँ, डाक्टर साहब। अरे, देखो तो सही! कहाँ की इल्लत सिर पर आ पडी। यह छोकडी मूरख है, होश में नहीं है। मेरी बातों पर वह ध्यान नहीं देगी। आप लोगों की कृपा से दस-बीस रुपया आ ही जाता है। उसी में से फलाने मे, ढिकाने में, डाक्टर की फीस में, दवा मे—खर्च करो! क्यों ? किस लिये ? पैसा इतना सस्ता है। भले आदमी से भी यह नहीं होने का...डाक्टर साहब! आप ही कहिये—क्या मैं ठीक नहीं कह रही हूँ ? और फिर तू...”

आप अस्फुट स्वर से कहने लगी—"ऐसा विषैला मन लेकर मैं इस दुनिया मे आई हूँ कि साधुओं पर भी सन्देह हो जाता है !"

(४)

काफी रात हो जाने पर मरीज़ को होश आया।

करवट लेकर रुक-रुक कर उसने कहा—"छाती...फटी...जा रही है...ज़रा.. पानी !"

पखा झलते-झलते उस समय सरोजिनी को जरा झपकी लग रही थी। मरीज का स्वर सुनकर, घबराकर खडी हो गई। झट झम्झर से एक गिलास पानी लाकर मरीज़ के मुँह के पास ले गई।

पानी पीकर मरीज़ ज़रा स्वस्थ मालूम हुआ। सरोजिनी उसके गर्म ललाट पर अपना ठढा हाथ फेरने लगी।

"ओफ ! छाती...फटी जा रही है.. छाती...जल रही है।"

सरोजिनी उसी क्षण उसकी छाती पर हाथ फेरने लगी। उसने आराम से "आह !" कहकर आँखे बन्द कर ली।

कुछ देर बाद फिर उसे प्यास लगी। सरोजिनी ने फिर उसको पानी पिलाया।

कुछ देर तक बेहोश आँखो से उसकी ओर देख कर, फिर लड़-खड़ा कर मरीज़ बोला—"कौन ? रमा बाई ! मेरी रमा ..बेटी !"

मुँह फेर कर वह बोली—"नहीं...नहीं मैं...मैं..."

मरीज़ आँखें बन्द किये-किये आप ही आप कहने लगा—"इतनी रात तक क्यों जाग रही है, बेटी ?"

बेटी ! इसका अर्थ कैसा मीठा है ! सरोजिनी का सारा हृदय आवेग से भर आया। वह हाथ पर सिर रख कर, उसी 'बेटी' शब्द को उलट-पलट कर, तरह-तरह से, मन ही मन दोहराने लगी।

उसे ख्याल हुआ मानो वह इस विपत्ति मे पड़े हुये बूढे की लड़की

और फिर, मरीज़ पर उसकी ममता भी हो गई थी। मरीज़ का वह कातर चेहरा अभी तक उसके हृदय पर खिंचा हुआ था।

आज चार-पांच-चार नौकर भेज कर उसने मरीज का हाल मालूम किया है। उसे मालूम हो गया था कि किसी तरह मरीज के घर के लोगों को पता लगने पर वे अस्पताल मे आ गये हैं।

× × ×

पाँच-छः दिन बाद उसे पता चला, मरीज़ का बुखार बन्द हो गया है। कल वह अपने घर चला जायगा।

एक शान्ति की साँस लेकर परमात्मा को धन्यवाद दिया। उसने निश्चय किया, वह आज ही मरीज से जाकर मिलेगी।

(६)

अस्पताल के सामने आकर सरोजिनी विक्टोरिया से उतर पड़ी। नौकर भी सवारी से उतरा। नौकर के साथ वह जाने लगी। नौकर ने उसे मरीज़ का कमरा दिखला दिया। धीरे से दर्वाजा खोलकर सरोजिनी कमरे के अन्दर गई।

एक तकिये पर टेक दिये बूढा सज्जन बैठा हुआ था। पास ही एक युवक और एक अधेड स्त्री बैठी हुई थी। बूढा जाने क्या बातें कह रहा था। सहसा सरोजिनी को देख कर कहते-कहते रुक गया।

सरोजिनी ने सकोच के साथ आगे बढ कर बूढे को एक कन्या की तरह नमस्ते किया।

सरोजिनी की ओर विस्मय से ताकते हुए बूढे ने कहा—"तुम कौन हो बेटी?"

सरोजिनी धीमे स्वर से बोली—"मुझे पहिचान नहीं सके, पिताजी?"

अच्छी तरह सरोजिनी को गौर से देखते हुए उसने कहा—हूँ...

इनाम !...सरोजनी को मानो किसीने जोर से एक धक्का दिया। सहसा वह गर्व के साथ सिर उठा कर दृढ स्वर से बोली—"हाँ !"

तकिये के नीचे से, बूढे ने एक दस रुपये का नोट निकाल कर अवज्ञा के साथ, सरोजिनी के सामने फेंक दिया। वह नोट सरोजिनी के शरीर से टकरा कर ज़मीन पर गिरा।

सरोजिनी ने झुक कर नोट उठा लिया। फिर किसी तरफ न देख कर, नीचे की ओर आँखें गड़ाये कमरे से निकल कर चली गई। सड़क पर आकर खड़ी हो गई।

एक लँगड़ा भिखमगा हाथ फैला कर बोला—"अम्माँ, मुझे कुछ दो !"

सरोजिनी ने झट भिखमङ्गे के हाथ में वह नोट ठूँस दिया।

मगता सहसा चौंक पड़ा! फिर सरोजिनी के पैरों पर गिर कर चिल्लाने लगा—"तुम्हारी जय हो, रानी !...तुम्हारी जय हो, रानी !..."

मगर ये बातें उसने नहीं सुनीं। बहरी होकर आसमान की अनन्त नीलिमा की ओर ताकती रही। हाय ! उसकी आँसू से भरी अन्धी आँखों के सामने दुनिया में अँधेरा...अँधेरा...!

तब मेरी उम्र पन्द्रह साल की थी। दुनिया के चारों तरफ एक रगीन प्रकाश का आभास पा रही थी। जाने कैसी एक अध-भूली स्वप्न की बात मन मे उठती थी। मालकिन ने आकर कहा—"प्यारा, बैठी-बैठी क्या सोच रही हो?"

कितनी ही बातें सोच रही थी! पर फायदा क्या? मालकिन बोलीं—"ये तुम्हारी नयी मालकिन हुई—नाच, गाना और बातो मे इनको सुखी करना ही तुम्हारा ध्येय है। समझीं? ये बहुत भली आदमी हैं।"

बहुत अच्छा! यह तो कोई नई बात नहीं है। तुम लोगों के सुख के लिये ही हम लोगों का जन्म हुआ है! अपना कुछ भी नहीं, तुम लोगों के लिये ही सब है!

(२)

पर बूढ़ी की बात गलत नही थी। नई मालकिन 'अदीली हानूम' का मुझ पर स्नेह और फिक्र अचिंतित भाव से अधिक था। उसने बहिन की तरह मुझे घर मे रक्खा।

शायद खुदा की कृपा हुई! मेरी साथिन बाँदियां मामूली घरों में खरीदी गई थीं—दिन भर काम करके, उनके गन्दे कुत्सित बच्चों को लिये रह कर, अस्वस्थ स्थानों मे रह कर, गरीबी और भूखे रहने के दुःख से मरी जा रही थीं। और मैं अदीली हानूम के धन और दौलत के नीचे आकर सब तरह के प्यार और फिक्र की अधिकारिणी हुई हूँ! केवल एक दुःख था—वह दुःख बहुत ही कष्ट-दायक था। अदीली के भाई मुराद का मिज़ाज बहुत कडा था। उसके निर्दय तिरस्कार से किसी दिन भी छुटकारा नहीं पाती थी। उस तिरस्कार मे ऐसी कठोरता रहती कि दूसरे के घर में रहनेवाली—जन्मकाल से दुःखी बाँदी होने पर भी आंसू रोके रहना असम्भव हो जाता। वह क्यों मुझ पर इतना नाराज़ रहता है! मुराद सुन्दर और किशोर है—

मेरा हृदय जाने कैसा कर उठा। मैं एकाएक कुछ बोल नहीं सकी।

मुराद ने फिर कहा—"तुम सोच रही हो, प्यारा, कि वह न जाने कितनी असुखी होगी, जो मेरी पत्नी हो रही है! मेरे जैसे बदमिज़ाज आदमी. .क्यों न?"

"नहीं, नहीं" मैंने कहा—"वह क्यों असुखी होगी? उसे तुम ज़रूर ही प्यार करोगे। मुझे इतना तिरस्कार करते हो, इसलिये क्या उसे भी तिरस्कार करोगे? सो नहीं।"

मुराद ने मेरा हाथ छोड़ दिया। मेरा सिर अपनी छाती के पास खींचकर उसने कहा—"तुम जरूर सोचती हो कि मैं सिर्फ तुमको तिरस्कार करता हूँ, प्रेम नहीं करता! ठीक कहा न, प्यारा? सुनो, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ—तुमसे बहुत प्रेम करता हूँ। एक मनुष्य जितना प्रेम कर सकता है, मैं तुमसे उतना ही प्रेम करता हूँ। इतना प्रेम करता हूँ कि तुम दूसरे की होगी, यह समझने पर तुम्हारी छाती में छुरी भोंक सकता हूँ।"

जाने क्यों, मेरी देह थरथरा उठी। आज मुझे प्रथम लगा कि यह दुनिया सुन्दर है। इस जगत् में सुख है। मैंने कहा—"तब क्यों तुम मुझको तिरस्कार करते हो?"

"क्यों तिरस्कार करता हूँ? प्यारा, मेरे तिरस्कार से तुम्हारी आँखें छलछलाती हैं, मन में दुःख पाती हो, पर मैं उससे ज़्यादा दुःखी होता हूँ। तुम्हें तिरस्कार करके मेरी आँखों में भी आँसू आ जाते हैं, यह तुम नहीं जानती हो। तुम्हारे आँसुओं ने मेरी तरह एक उद्दण्ड पशु को वश में कर लिया है! प्यारा, आज से तुम इस घर की बाँदी नहीं—तुम प्यारा खानूम—इस घर की मालकिन, मेरी प्रेमिका हो।"

विह्वल मुराद ने मेरे ओठों का चुम्बन कर लिया। आवेश से मेरी आँखें बन्द हो गईं। फिर धीरे-धीरे वह चला गया। बरामदे

मे बाँदी हूँ—उन्हीं की तरह दूसरे की खिदमत में मेरा जीवन बीता है। सिर्फ थोडे से सौन्दर्य के लिये, अब मै उनकी मालकिन हूँ, और वे मेरी बादियाँ हैं—इसी तरह की बाते थीं। पर उन बातों से नुक़सान क्या—दु.ख क्या ? मेरा मुराद, चांद के एक टुकडे की तरह मेरा यह बचा—दुनिया मे मेरी यही एकमात्र चिन्ता है—सुख है ! दूसरे की बाते सोचने का मुझे अवसर नही था। और जरूरत ही क्या है ?

एक दिन शाम को एक मित्र के निमन्त्रण से मुराद बीकी शहर में गया। बच्चे को छाती मे दबाये मैंने विरह का दु ख भूला।

उस समय रात्रि के ग्यारह बजे थे। हरम के चारो तरफ निस्तब्धता थी। नींद से सब बेहोश थे।

सहसा एक बाँदी ने दरवाजा खोलकर मेरे कमरे मे प्रवेश किया। उसका चेहरा भयानक-सा लगा। उसने कहा—"आग ! घर मे आग लगी है !" फिर वह हँसी। कैसी भयानक और निर्दय वह हँसी थी ! फिर बाहर से मेरे कमरे के दरवाज़े मे ताला लगा कर, क्षण भर मे वह अदृश्य हो गई।

घर में आग लगी है ! उसका मतलब है—मृत्यु ! भीषण और निर्दय मृत्यु ! सारे अग जल जायँगे—ओफ़ ! यह असह्य है। मैं अपने लिये नहीं सोचती हूं, पर यह बच्चा—यह जो मेरा सर्वस्व है, बिस्तर पर लेटे हुये दोनो हाथ हिला कर मुस्करा रहा है। इस समय भी मुस्करा रहा है ! अहा, बेचारा बिलकुल ही अबोध है, नहीं जानता है कि वह किस कदर खतरे मे पडा है। और मैं—उसकी माँ— कैसी असहाय और अक्षम हूं, आज इस खतरे से मैं उसे बचा नहीं सकूँगी !

खिड़की खोल दी। बाहर आग थी। उसकी हजारों खून-सी लपटें, सांप के फन की तरह ऊँची उठ रही हैं ! कैसा तीव्र प्रकाश है ! कैसा उज्ज्वल है ! आज उसीके कौर मे अपना दिल उखाड कर सौंपना पडेगा।

अब हम लोग गरीब हैं। बाँदी नौकर सब भाग गये हैं। मुराद ने कहा—"बाँदियों ने डाह करके घर में आग लगा दी थी।"

× × ×

एक छोटी कुटिया मे हम लोग रहते हैं। मुराद नौकरी करता है—उससे दिन गुजरान हो जाता है। अब घर में बाँदी नौकर नहीं हैं। गृहस्थी का काम मैं करती हूँ। भोजन बनाकर मैं, मुराद को खिलाती हूँ।

एक चुम्बन से, मेरे सारे कामों की थकावट हर कर जब मुराद नौकरी पर जाता है, तब मै घर मे, बच्चे से खेल कर दिन काटती हूँ। सध्या के समय दिन का काम खतम करके मुराद के इन्तज़ार मे बैठी रहती हूँ। आँचल मे सिहरन देकर सध्या की हवा धीरे से बह जाती है—पेडों की आड़ मे पक्षी गाने गा उठते हैं—बच्चे को छाती में लिये, लोरी गाकर मैं उसकी आँखों मे नींद लाती हूँ!

मुराद आकर कहता है—उसका स्वर रुक जाता है—"तुम्हें बहुत तकलीफ हो रही है, प्यारा, इतनी मेहनत करने पर बीमार पड़ जाओगी!"

मेरी आँखे आँसुओं से भर आती हैं। मुझे भला तकलीफ हो रही है! वह अमीर था! इतना अमीर! उसे कभी भी काम करने की आदत नहीं थी। अब उसने मेरे लिये मेहनत में जान लगा दी है! मेरी जुबान • रुक जाती है—चाह होती है कि उसके पैरो में सिर रख कर कहूँ कि मेरी मेहनत के लिये प्रियतम! तुम क्यों दु:खित होते हो! मैं तुम्हारी बाँदी जो हूँ!

बच्चे को दिखा कर मालती ने हँसते हुये कहा—"क्यों नहीं रह सकूँगी?...यह एक पहलवान मेरी खबरदारी के लिये रहा। तुम जाओ, मगर ज्यादा देर न करना, रामभरोस आवेगा या नहीं, कौन जानता है?"

आखिर, जल्दी लौट आने का वादा कर, रामचन्द्र विद्यार्थियों के साथ चले गये।

रामचन्द्र के जाने के कुछ ही देर पश्चात् 'पहलवान साहब' माँ की गोदी में सो गये। बच्चा-बाबू को बिस्तर पर लिटाकर, मालती ने लडके के ऊनी मोजे का अन्तिम अंश बुन कर खतम कर डाला। फिर एक मासिक पत्रिका लेकर बच्चे के पास लेट गई।

(२)

निकट के अंग्रेजी स्कूल की घडी में टन से रात्रि के साढ़े बारह का घण्टा बजा। काफी ठण्ढी रात्रि थी—चारों ओर बिलकुल सन्नाटा। कुहरे से सब अँधेरा। ठीक इसी समय एक जवान, चोर की तरह दबे पाँव, फाटक के अन्दर गया और चुपके से एक किवाड खोलने की कोशिश करने लगा। थोडी ही देर में किवाड़ खुल गये।

यह आदमी—प्रसिद्ध चोर और बदमाश सुलेमान खा था। कई चोरियों के लिये पुलिस इसकी तलाश में थी, मगर पकड़ नहीं पाती थी। इसीलिये सुलेमान का एक और भी नाम पड गया था—'खलीफा'।

अध्यापक रामचन्द्र के बगले पर सुलेमान की बहुत दिनों से निगाह थी। वे धनवान के लडके हैं, तिस पर चार-पाँच सौ तनख्वाह मिलती है, बगले में आदमी भी कम हैं; यहाँ किसी तरह घुस जाने पर कुछ न कुछ हाथ आवेगा ही!—यह सब बातें वह पहले ही से जानता था। इसलिये आज जैसा अच्छा मौका वह हाथ से निकल जाने देना नहीं चाहता था।

या अलवान में बांधकर। उसे बॉक्स ले जाना ठीक नहीं जँचा—राह में कोई सन्देह कर सकता है। यह सोच कर, वह अलवान बिछाकर बॉक्स से गहने उडेलने जा रहा था कि इतने में, अठारह—उन्नीस साल की एक युवती, पागल की तरह दौड़ी हुई कमरे में आई।

एकाएक उस युवती को आते देखकर, सुलेमान की तरह साहसी आदमी की भी देह थर्रा। वह झट एक लम्बी छुरी निकालकर सीधा खडा हो गया। युवती उसी की ओर बढ़ी आ रही है देख, वह छुरा उठाकर, बोला—"और एक क़दम अगर आई तो...यह छुरी तुम्हारी छाती में भोंक दूँगा!"

मगर युवती बिलकुल न डरकर, हाँफते हुये बोलने लगी—"अजी! तुम ज़रा इधर आना!...देखो तो...मेरे बच्चे को क्या हो गया! वह क्यों इस तरह कर रहा है!"

सुलेमान ने फिर छुरा ऊँचा कर, ज़रा आगे बढ़कर डाटने के स्वर से कहा—"खबरदार! तुम अगर चिल्लाई तो जान से मार दूँगा!"

युवती को मानो कुछ भी परवाह नहीं!.. अब सुलेमान को दो क़दम पीछे हटना पड़ा। कुछ चकित होकर उसने युवती की ओर गौर से देखा' उसकी दोनों बड़ी-बड़ी आंखें आँसुओं से भरी हुई थीं—उसकी करुण-प्रार्थना भरी दृष्टि सुलेमान के चेहरे की ओर एक टक बँधी हुई थी। बिजली की रोशनी सीधी उस युवती के चेहरे पर पड़ रही थी। सुलेमान ने वैसा सुन्दर मुखड़ा जीवन भर में कभी नहीं देखा था। फिर क्षण भर में वह युवती घुटने टेक कर बैठ गई और दबे हुये स्वर से कहने लगी—"अजी! मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ.. तुम मेरे बच्चे को बचाओ .."

सुलेमान बहुत चकित था!—गहरे पुत्र-स्नेह में डूबी हुई इस युवती के सामने, सुलेमान का डर दिखाना कितनी आसानी से व्यर्थ हो गया! जीवन में आज पहली बार उसने अपने को बिलकुल अयोग्य

गिरने लगे।—पागल की भाँति अधीर होकर वह कहने लगी—"यह क्या है ?...इसे क्या हो गया है ?...मेरा बच्चा क्यों ऐसे कर रहा है ! तुम जल्द जाओ...एक डाक्टर बुला लाओ। मेरे पति नाटक देखने के लिये गये हैं...उन्हें खबर दे दो...तुम मेरे नौकर रामभरोस का घर जानते हो ?"

सुलेमान ने एक कड़ी धमकी देकर कहा "चुप रहो—रुको मत ! जाओ एक लोटा पानी लाओ।"

मालती जल लाने के लिये दौड़ी।

सुलेमान बच्चे की ओर एकटक देख रहा था। डेढ़ साल के बच्चे का यह असीम कष्ट देख कर सुलेमान का कठिन हृदय सहानुभूति से भर गया।—'यह छोकरी पानी लाने में इतनी देर क्यों कर रही है ?'—कह कर, घबराये हुये सुलेमान के पानी के लिये चारों ओर देखते ही, पलग के नीचे गिलास से ढकी हुई एक सुराही देख पड़ी। वह झट सुराही लेकर बच्चे के मुँह पर, आँखों पर लगातार पानी के छींटे देने लगा।

कुछ देर के बाद मालती एक लोटा पानी लिये हाँफते हुये आकर बोली—"यह लो !"

सुलेमान ने कहा—"पानी तो यहीं था...मुझे मिल गया। तुम बच्चे के सिर पर पखा झलो।"

मालती एक पखा लाकर झलने लगी। सुलेमान ने अपना रूमाल फाड़ कर, एक पतली पट्टी जल से भिगा कर उसके माथे पर रख दी। फिर उसके मुँह पर पानी के छींटे देने लगा।

पाँच-सात मिनट के पश्चात् बच्चे की साँस स्वाभाविक ढँग से चलने लगी—हाथ-पैर का पटकना और शरीर का काँपना धीरे-धीरे मन्द होने लगा। बच्चा कुछ ही देर में बिल्कुल स्वस्थ होकर चारों ओर देखने लगा। सामने माँ को देख कर, उसने हँसते हुये, छोटे-छोटे मोम के से दोनों हाथ माँ की ओर बढ़ा दिये।

माँ की गोदी से गिरने लगा—अगर झट सुलेमान हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ न लेता, तो ज़मीन पर गिर कर उसका सिर फूट जाता।

फूल की तरह कोमल बच्चे को छाती से लगा कर सुलेमान के बहुत दिनों से जले हुए हृदय को मानो सुख मिला—बहुत सुख मिला! सैकड़ा साल से सूर्य-ताप से जलता हुआ रेगिस्तान मानो किसी जादू के हाथ के स्पर्श से, क्षण भर में ओस से भीगा हुआ हरा-भरा मैदान हो गया।

सुलेमान ने एक झटके से पीर का तमगा गले से निकाल कर, मुस्कराते हुये बच्चे के गले में पहिना दिया। फिर वह बच्चे को खिलाने लगा, उसे पीठ पर बैठाया—और प्यार करने लगा! बीस साल के पश्चात्, उसके हृदय का पत्थर मानो हटा है और वात्सल्य स्नेह का झरना फिर पूर्ण वेग से गिरने लगा है। नटखट बच्चा भी प्यार पाकर, प्रफुल्ल होकर, बड़े उल्लास से उससे खेलने लगा।—सुलेमान के चेहरे पर मुस्कान और आँखों में आँसू थे! बार-बार ऐसे ही एक दूसरे बच्चे की याद उसे आने लगी।—सुलेमान कह पड़ा—"अब्दुल! अब्दुल—यह ठीक मेरे अब्दुल की तरह है। बड़ा ताज्जुब है! छोटे बच्चे क्या सब एक-से होते हैं!"

(६)

मालती के पास जितने गहने थे, सब को एक थाली में सजाकर, हाथ में लिये वह सुलेमान के सामने खड़ी हुई। सुलेमान वह थाली देख कर—जैसे कोई खूनी आधी रात में क़त्ल किये आदमी को एकाएक जिन्दा देखकर चौंक पड़ता है—उसी तरह चौंक कर, बच्चे को पलंग पर बैठाकर, जोर से भागा! वह भागते हुये गिड़-गिड़ाकर कह कहता जाता था—"नहीं-नहीं, मैं वह सब नहीं छुऊँगा—!"

मालती विस्मय से अवाक् रह गई!—माँ को अनमना देख कर जब बच्चा उस तमगे को अपने मुँह में रखकर उसका स्वाद ले रहा था, उसी समय नाटक देख कर लौटे हुये रामचन्द्र बोले—"क्या सारी रात दरवाजा खोलकर मेरे लिये इन्तजार कर रही थी, मालती? तुम्हें कब अक्ल आयेगी? अगर चोर आ जाता तो...?"

निर्जीव आनन्द से अपने को मुक्त पाकर, अमरसिंह लक्ष्मी से साक्षात् करने के लिये गया।

उस समय पूर्णिमा का चन्द्र उदय हुआ था। लक्ष्मी भी अधीर होकर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह एक लाल रंग की साडी पहिने थी। उसके बिखरे हुये बालों में हवा खेल रही थी। चन्द्रमा के प्रकाश से उसके मुख पर अलौकिक सौन्दर्य दीख रहा था।

अमरसिंह ने आकर जब उसे देखा, तो उसके नयनों में युवती लक्ष्मी ससार भर का सौन्दर्य, सुगन्ध और सगीत लेकर विराजमान थी। उसे लग रहा था—मानो ससार में उन दोनों के सिवा और कोई नही है, कुछ नहीं है!

लक्ष्मी मुस्कराती हुई बोली—"अमरसिंह, आज तुम बहुत देर से आये। मैंने सोचा था—" अपनी बात पूरी होने के पहले ही उसने लज्जित होकर सिर नीचा कर लिया। अमरसिंह के बहुत आग्रह करने पर वह अपने अचल से सुन्दर फूलों का हार एक निकाल कर बोली—"मैंने तुम्हारे लिये यह हार बनाया था।"

अमरसिंह ने हँसकर कहा—"तो मैं देर से आया हूँ इसलिये क्या यह मुझे नहीं मिलेगा?"

लक्ष्मी ने मुस्करा कर वह हार उसके गले में पहिना दिया। अमर सिंह ने लक्ष्मी की बडी-बड़ी आँखों की ओर देखते हुये क्षण भर में अपना होश खो दिया। सहसा आवेग से लक्ष्मी के सामने घुटने टेक कर, बैठकर कम्पित स्वर से कहने लगा—"मुझ पर तुम्हारा स्नेह है—कृपा है, यह मुझे मालूम है। मैं एक बात बहुत दिनों से पूछना चाहता था—उसे आज मैं तुमसे अवश्य पूछूँगा।—क्या तुम मेरी पत्नी होकर मुझे सदा के लिये सुखी करोगी?"

लक्ष्मी ने उत्तर नहीं दिया। अमरसिंह का यह आकस्मिक आवेग देखकर और प्रश्न सुनकर वह इतनी घबरा गई कि उत्तर देने की

गये हैं—आप चाहें तो, अवसर ले सकते हैं। आप कृपया इस मामले में न पड़िये।"

मन्त्री अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुये चुप-चाप बैठ गये। मामला बेढब देखकर किसी ने एक शब्द भी नहीं कहा। महाराजा ने क्रोध-भरे स्वर से सन्तरियों से कहा—"नमकहरामों! भर पेट भोजन कर सकते हो, मगर आज्ञा पूरी नहीं कर सकते।"

तिरस्कृत होकर दोनों सन्तरी सेनापति की ओर बढ़े, मगर सेनापति का हाथ पकड़ने का साहस नहीं कर सके। सेनापति के गम्भीर चेहरे की ओर देख कर उन लोगों के हृदय में कँपी-कँपी हो रही थी।

सेनापति ने हलकी मुस्कान के साथ कहा—"महाराज! आप गलती कर रहे हैं; सेनापति माधवसिंह को कैद करने की शक्ति इन साधारण सन्तरियों में नहीं है।" फिर सन्तरियों की ओर देख कर कहा—"गुलाबसिंह, मैं कैदी हूँ। मुझे कहाँ ले चलोगे?—ले चलो। सेनापति विद्रोही नहीं है—उसे महाराजा की आज्ञा स्वीकार है।"

आगे सेनापति और पीछे हथियार-बन्द सन्तरियों के चले जाने पर महाराजा कुछ घबराये—नाराज़ हुये। कैदी को क़ैदी की तरह ले जाना चाहिये। अतिथि की भाँति खातिर से ले जाना राजनीति में नहीं लिखा। मगर जो हो गया है, वह पलट नहीं सकता। महाराजा ने अपने को बहुत अपमानित समझा।

क्या सेनापति ने उसका उपहास नहीं किया? भलेमानुस की तरह क़ैदखाने में जाकर, मानो उसने उन पर बड़ी कृपा की! सेनापति समझते हैं, सिंहासन पर महाराजा गुड़िया की तरह बैठे हैं। मगर वे कैसे दिखावें कि वास्तव में ऐसा नहीं। उनके पिछले पच्चीस साल के जीवन में कभी ऐसी घटना नहीं हुई थी। इसीलिये वे कुछ व्याकुल हुए। मगर सेनापति का क्या अपराध है—किस लिये उसे कैद किया गया, वे निश्चय नहीं कर सके—स्वयं नहीं समझ सके।

गये हैं—आप चाहें तो, अवसर ले सकते हैं ! आप कृपया इस मामले मे न पड़िये।"

मन्त्री अपनी सफ़ेद दाढी पर हाथ फेरते हुये चुप-चाप बैठ गये। मामला बेढब देखकर किसी ने एक शब्द भी नहीं कहा। महाराजा ने क्रोध-भरे स्वर से सन्तरियों से कहा—"नमकहरामो ! भर पेट भोजन कर सकते हो, मगर आज्ञा पूरी नहीं कर सकते,?"

तिरस्कृत होकर दोनों सन्तरी सेनापति की ओर बढे, मगर सेनापति का हाथ पकडने का साहस नहीं कर सके। सेनापति के गम्भीर चेहरे की ओर देख कर उन लोगों के हृदय मे कॅपी-कॅपी हो रही थी।

सेनापति ने हलकी मुस्कान के साथ कहा—"महाराज ! आप गलती कर रहे हैं, सेनापति माधवसिंह को कैद करने की शक्ति इन साधारण सन्तरियों मे नहीं है।" फिर सन्तरियों की ओर देख कर कहा—"गुलाबसिंह, मै कैदी हूँ। मुझे कहा ले चलोगे ?—ले चलो। सेनापति विद्रोही नहीं है—उसे महाराजा की आज्ञा स्वीकार है।"

आगे सेनापति और पीछे हथियार-बन्द सन्तरियों के चले जाने पर महाराजा कुछ घबराये—नाराज हुये। कैदी को क़ैदी की तरह ले जाना चाहिये। अतिथि की भाति खातिर से ले जाना राजनीति मे नहीं लिखा। मगर जो हो गया है, वह पलट नहीं सकता। महाराजा ने अपने को बहुत अपमानित समझा।

क्या सेनापति ने उसका उपहास नहीं किया ? भलेमानुस की तरह क़ैदखाने मे जाकर, मानो उसने उन पर बड़ी कृपा की ! सेनापति समझते हैं, सिंहासन पर महाराजा गुड़िया की तरह बैठे हैं ! मगर वे कैसे दिखायें कि वास्तव मे ऐसा नहीं ! उनके पिछले पचीस साल के जीवन मे कभी ऐसी घटना नहीं हुई थी। इसीलिये वे कुछ व्याकुल हुए। मगर सेनापति का क्या अपराध है—किस लिये उसे कैद किया गया,वे निश्चय नहीं कर सके—स्वय नहीं समझ सके।

टाल कर, आँखे फेर कर कहा—"ठीक कहा ! राजा केवल राज-कार्य करने का यत्र है—सिंहासन की शोभा है—काठ की गुडिया है राजा को परिहास करने का भी अधिकार नहीं !"

महाराजा सुजित्‌सिंह पचीस साल की उम्र के नव युवक थे। यौवनोचित आशा और आनन्द से उनका हृदय भरा हुआ था। मगर हास-परिहास करने के लिये, हृदय मे सुख और दुःख की बाते कहने के लिये उनका कोई भी मित्र नहीं था। यों चापलूसी करनेवाले बहुत से दरबारी थे—बहुत से लोग थे। मगर एक सच्चे मित्र का न होना उन्हें बहुत असरता था। इसीलिये इस कम बोलनेवाले, शिक्षित, सुन्दर और रण-निपुण नवयुवक सेनापति को पाकर महाराजा बहुत खुश हुये थे। किन्तु थोडे ही दिनो मे वे अपनी गलती समझ गये। महाराजा ने देखा—सेनापति राज्य का हिताकाक्षी है, बुद्धिमान है, प्रभुभक्त है, उदार-हृदय मित्र है, मगर हृदय के सुख-दुख का बँटवारा करने लायक नहीं, हास-परिहास के उपयुक्त नहीं। सेनापति पर महाराजा का आदर और प्रेम देख कर राज्य के बडे-बडे अधिकारी महाराजा पर मन ही मन बिगड़ने लगे। मगर जिसके सौभाग्य पर राज्य भर के लोग ईर्ष्या कर रहे थे—उसे इस आदर और प्रेम का ध्यान तक नहीं था। राज-काज से जब उसे अवसर मिलता तब वह ज्यादातर निर्जनता मे रहना पसन्द करता। लोग सोचते—यह उसका घमड है। महाराजा के प्रिय हो जाने के कारण सेनापति को निजर्नता मे रहने का सुख भी दुर्लभ हो गया। इससे सेनापति अपने को गौरवान्वित न समझ कर सङ्कट में ही मान रहा था। महाराजा ने पता लगाया—सेनापति अकेला रहता है, उसके घर मे कोई नहीं। जो कुछ उसे तनख्वाह मिलती है, उसका अधिकांश दान कर देता है। वह बहुत ही साधु-चरित्र युवक था—सदा परोपकार के लिये तैयार। सेनापति के विषय मे महाराजा जितनी ही खबर लेने लगे ! उतना ही उसकी ओर अधिक से

बैठे हुये हैं—दवाओं की ढेरी लगी है। कारण पूछने पर वैद्य और हकीम लोग कहने लगे, महारानीजी के हुक्म से महाराजा की चिकित्सा के लिये आये हैं। महाराजा उन लोगो पर बिगडे। वे उनका भाव देख कर डर कर चले गये।

महाराजा महारानी को समझाने लगे, उनकी तबीअत ठीक है—दिमाग मे कोई खराबी नहीं—और लोगों की तरह वे बिलकुल होश में हैं। मगर महारानी इस बात पर विश्वास नहीं करती थीं। वे कैसे विश्वास कर सकती थी?—महाराजा स्वय कह रहे हैं—सेनापति का कैद होना सच है, और उसने महाराजा के विरुद्ध कुछ भी नहीं किया है।

माहरानी जोर देने लगी—महाराजा को अपना इलाज कराना ही होगा, नहीं तो वे भोजन नहीं करेगी।

अन्त मे वे होश मे हैं, यह साबित करने के लिये महाराजा ने वचन दिया कि अभी जाकर अपने हाथ से सेनापति को मुक्त करेगे और उनसे कहेगे—"यह केवल परिहास था!" इसीलिये कोई साथी न लेकर वे सेनापति की कोठरी में गये थे। जाते समय अपने व्यवहार के लिये महाराजा मन ही मन लज्जित हो रहे थे।

महाराजा ने कहा—सेनापति! तुम्हारी कहानी सत्य से भी सजीव है। इसका अन्त मुझे सुनाना पड़ेगा।"

सेनापति इस बात को नहीं सुन पाया। वह नर्मदा के जल की ओर देखते हुये न जाने क्या सोच रहा था। महाराजा समझ गये, सेनापति अनमना है—चिन्तित है! इसीलिये उन्होंने फिर अपनी बात दोहराई। सेनापति ने हलकी मुस्कान के साथ कहा—"महाराज! सेवक को इस कहानी का अन्त मालूम नहीं। जहाँ तक मैं जानता था, कह चुका हूँ।"

महाराजा अब तिरस्कार के स्वर से बोले—"माधवसिंह!"

सेनापति की आंखें क्षण भर के लिये उज्ज्वल हो गई—उसका सुन्दर मुख गुलाबी हो गया। मगर अपने को सम्हाल कर सेनापति ने कहा—"महाराज, आप दूरदर्शी हैं, आप ही अनुमान कीजिये!"

महाराजा बोले—"मेरे ख्याल में, सरला लक्ष्मी सन्यासिनी हो गई, या तुम्हारे कहने के अनुसार बेहोशी की अवस्था में मर कर निष्फल प्रेम के दुःख से बच गई! और अमरसिंह बिवाह कर बड़े सुख से जीवन काट रहा है।"

सेनापति के चेहरे पर विषाद की एक हलकी मुस्कान आई और क्षण भर में विलीन हो गई। वह बोला—"महाराज, आप राज-काज में बहुत योग्य हैं, परन्तु प्रेम-रहस्य में नौसिखिया हैं।"

महाराजा के माथे पर बल पड़ गये। सभासद लोग सेनापति की गुस्ताखी देख कर मन ही मन डर रहे थे। महाराज ने कहा—"मैं अन्त तक तुम्हारी कहानी सुनना चाहता हूँ।"

सेनापति का चेहरा पीला पड़ गया, माथे पर पसीना आ गया। उसने दृढ़ स्वर से कहा—"क्षमा कीजिये, महाराज! मैं अगर जानता कि कहानी सुनने पर आपका यह भाव होगा, तो मैं कभी नहीं सुनाता। क़िस्सा—केवल क़िस्सा ही है।"

महाराजा का चेहरा और भी ज्यादा गम्भीर हो गया। उन्होंने फिर कहा—"सेनापति, कहानी खतम करो—"

"कल आपको कहानी का अन्त सुना तो दिया, महाराज! और क्या सुनना चाहते हैं?" सेनापति के चेहरे पर निरुपाय का भाव था।

"मैं बिलकुल सच्ची बात सुनना चाहता हूँ—बिलकुल सच्ची बात! मुझे विश्वास है, वीर माधवसिंह सदा सच ही बोलता है। क्यों सेनापति?"

देवी को देखने के लिये पथ पर धक्का-मुक्की कर रहे थे। सिपाही लोग उस उत्तेजित जन-मंडली को शान्त करने में असमर्थ हो रहे थे। हजारों कंठों से गगन गूँज रहा था—"महाराजा और महारानी की जय!"

प्रजा के सविनय अनुरोध से, राजमाता के मुख का आवरण हटने पर, क्षण भर के लिये वह उत्तेजित जनमंडली स्तब्ध हो गई। फिर वे महाराजा और महारानी की जय-ध्वनि करने लगे। कीमती अलंकारों से सजी हुई—रेशमी साड़ी पहिने हुई, महारानी की ओर देखकर प्रजा के सिर भक्ति और विस्मय से झुक गये। महारानी की मूर्त्ति एक सजीव देवी की भाँति पवित्र और सुन्दर थी।

आगे बढ़ते हुये अमरसिंह आँखें मल-मल कर बार-बार उसी ओर देख रहा था। उसके सामने वह हजारों आदमियों की भीड़, महाराजा और महारानी, ऊपर नीला आकाश—सभी धुँआ-सा, कुहरे से ढँका-सा प्रतीत हुआ। उसके पैरों के नीचे से घोड़ा समेत स्वयं पृथ्वी हटी जा रही थी। अमरसिंह जग रहा था न! स्वप्न तो नहीं देख रहा था?"

कहानी खतम हो गई। सम्पूर्ण कहानी सब की समझ में न आने पर भी, वक्ता के चेहरे से, कहने के ढँग से सुननेवालों की आँखें सजल हो गई थीं। महाराजा ने उससे गले मिल कर कहा—"अमरसिंह! सचमुच तुम प्रेमी हो!"

सभासद् लोग चकित होकर महाराजा और सेनापति की ओर देखने लगे। सेनापति को चुप देखकर महाराजा फिर बोले—"अमरसिंह, आज से तुम केवल मेरे सेनापति नहीं हो, मेरे सब से प्रिय मित्र हो। तुम्हारे जैसा मित्र पाकर मेरा हृदय गर्वित है।"

सेनापति ने खड़े होकर कहा—"महाराज! आप बहुत ही अयोग्य आदमी पर विश्वास कर रहे हैं। सेवक इस सम्मान के योग्य नहीं!"

कटा सिर

बगदाद के सुलतान हारून-उल-रशीद ससार के प्रसिद्ध बादशाह
। उनके स्वर्गवास के एक सौ साल के पश्चात्, उन्हीं के खानदान
अलीमोहम्मद नाम के एक बादशाह को सल्तनत मिली। सल्तनत
पर कायम हो जाने के बाद उन्होंने गौर किया कि उनके राज में लोगों
के दिल मे इस्लाम-धर्म के प्रति पहले की तरह श्रद्धा नहीं रह गई है।
बहुत से लोग मूर्तिपूजक हो गये हैं और तरह-तरह के कुसस्कार समाज
मे फैल गये हैं। यह देखकर बादशाह को बहुत दुःख हुआ और
उन्होंने यह निश्चय किया कि अपने पूर्वज प्रख्यात हारून-उल-रशीद
की तरह वे भी भेष बदल कर टहलते फिरेंगे और धर्म-पतित लोगों के
काम का अवलोकन करके उनको उचित सजा देंगे। राज मे कहा
कौन भूखा है, तकलीफ मे है इत्यादि देखकर यथोचित प्रबन्ध करेंगे।
यही सब सोच कर वह तरह-तरह के भेष बदलकर प्रत्येक रात को शहर
मे सैर करने लगे। किसी दिन फकीर के भेष में, किसी दिन सौदागर के
भेष मे, किसी दिन उमराव के भेष मे निकलने लगे। भेष इस तरह
का होता था कि कोई उन्हें नहीं पहिचान सकता था। सिर्फ उनके दो-
चार वजीर और अनुयायी ही इस बात को जानते थे।

कुछ ही दिनों मे राज के लोग उनके खिलाफ आन्दोलन करने
लगे, और राज के काया-पलट होने की आशका होने लगी। तब बाद-
शाह ने यह निर्णय किया कि अब मुझे ऐसी सावधानी से काम लेना
चाहिये कि हमारे वजीरों को भी पता न लगे। वह लोग भी किस तरह
के आदमी हैं इसका पता लगाना चाहिये।

भेष बनाने के लिये उन्होंने कई दर्जियों को नियुक्त किया था।
अब किसी भी वजीर से कुछ न कहकर, मनसूर नाम के एक विश्वासी

दर्जी ने तब कहा, "मगर यह तो बडी बेढब बात है। आजकल के दिन खराब हैं, इसीलिये डर मालूम होता है। खैर, अगर आप अच्छी मजदूरी दे, तो मैं जाने के लिये तैयार हूँ। ज्यादा पैसा मिलने पर मैं शैतान के लिये भी पोशाक बना सकता हूँ।"

"अच्छा, तो यह लो," कहकर मनसूर ने दो अशर्फी उसके हाथ मे दो।

इकट्ठी दो अशर्फी अब्दुल्ला ने जिन्दगी भर मे कभी नहीं देखी थीं। अशर्फी पाकर बहुत खुश हो गया और कहा, "कब जाना होगा?"

मनसूर ने कहा, "रात को बारह बजे दूकान में रहना। मैं तुम्हे साथ लेता जाऊँगा।" कहकर वह चला गया।

अब्दुल्ला अपनी बीबी को यह खुशखबरी देने के लिये छटपटाता हुआ झटपट दूकान बन्द करके घर को चल दिया।

उसकी बीबी का नाम था दिलफरेब। वह भी दर्जी की तरह वृद्ध हो गई थी। मियां से यह खुशखबरी सुनकर और दो अशर्फी पाकर वह भी बहुत खुश हुई। उस रात को वे लोग गर्म कबाब खरीद लाये और भर पेट खाये। अंगूर और मिठाई भी मँगवा कर खायी। भोजन के पश्चात् दो प्याली काफी बनाकर पीते-पीते वे लोग आनन्द से बातें करने लगे।

(२)

रात को बारह बजे अब्दुल्ला दूकान पर आ गया। कुछ ही देर में मनसूर भी आया।

मनसूर उसकी आंखों में रूमाल बांध कर अनेक सड़कों में घुमा-फिराकर राज-भवन के पीछे के दर्वाजे के भीतर ले गया। सुलतान के गुप्त कमरे मे उसे ले जाकर आंखों ने रूमाल निकाल लिया।

आंखें खुलने पर अब्दुल्ला ने देखा, एक बहुत सजा हुआ कमरा है और वहां धीमी रोशनी जल रही है। मनसूर ने कहा—"यहीं ठहरो, मैं अभी आ रहा हूँ।"

अब्दुल्ला झटपट घर लौटा। दिलफरेब मियाँ के लिये बेचैन होकर प्रतीक्षा कर रही थी। अब्दुल्ला को देख कर उसने कहा, "गये थे?"

"हाँ, गये थे। नमूना लेकर आये। एक फकीर के लिये पोशाक बनानी है। बन जाने पर और दो अशर्फियाँ मिलेंगी।"

दिलफरेब ने कहा "नमूना दिखलाओ तो।"

दर्जी ने कहा, "बहुत रात हो गई है। चलो अब सोयें। कल सुबह देखना।"

दिलफरेब ने कहा, "नहीं, अभी दिखलाओ। मेरी देखने की इच्छा हो रही है। न देखने पर नींद नहीं आयेगी।" यह कहकर दिलफरेब ने बण्डल को खोल डाला। उसमें से फकीर की पोशाक नहीं निकली, निकला हाल का कटा हुआ, खून में ओत-प्रोत, एक आदमी का सिर! बूढे दर्जी और उसकी बीबी की बोली बन्द हो गई। मारे डर के उन लोगों ने अपने हाथों से आँखें ढक लीं। फिर आश्चर्य भरे नेत्रों से एक दूसरे को देखने लगे।

कुछ ही क्षण में बुढिया को गुस्सा आ गया। उसने कहा, "बडा अच्छा काम लाये हो! अब अमीर हो जाओगे! सुबह होते ही जब पुलिस आवेगी और लेजाकर फांसी दे देगी तब...?"

बूढे ने कांपते-कांपते कहा, "या अल्ला! या अल्ला! यह क्या हो गया! उसके माँ-बाप जहन्नुम में जायँ वे मुझे इस तरह से फँसा गये! जब मैंने सुना था कि आखों में रूमाल बाँधकर जाना होगा तभी मुझे डर मालूम हुआ था। अल्ला! अल्ला! अब क्या किया जाय? उस बदमाश के मकान का पता भी नहीं मालूम कि इस सिर को लौटा सकूँ! दिलफरेब! कहो, अब क्या किया जाय?"

बुढिया बैठे बैठे सोचने लगी। कुछ देर बाद उसने कहा, "जैसे ही सही इस कटे सिर को कहीं हटाना होगा। नहीं तो सुबह होते ही हम दोनों मारे जायेंगे।"

खींचातानी में तन्दूर का ढक्कन खुल गया और कटा हुआ सिर निकल आया।

यह देखकर हसन चिल्लाया, "या अल्ला! यह किस शैतान का काम है? किसने कतल करके इस सिर को यहाँ रख दिया? गनीमत है कि कुत्ते ने समझ लिया था—नहीं तो मेरा चूल्हा नापाक हो जाता। यह अल्ला की दुआ है! अब इस सिर को क्या किया जाय? हमारे यहाँ अगर कोई इसे देख पायेगा, तो हम लोगों को खूनी समझेगा! आखिर फाँसी पर लटकना पड़ेगा।"

मामूद ने कहा, "अब्बा! इसे हटाना चाहिये। सुबह होने में अब देर नहीं है।"

हसन बोला, "हमारी दूकान के बगल में रजाअली नाऊ की दूकान है, वहीं इसे रख आ। रज़ाअली अभी दूकान खोलेगा। वह एक आँख का अधा है, वह तुझे नहीं देख पायेगा। जल्दी चला जा।"

इतने में रजाअली ने आकर अपनी दूकान खोली। तब तक कुछ-कुछ अँधेरा था। मामूद ने दबे पाँव जाकर देखा कि रज़ाअली दूसरे कमरे में जाकर गरम पानी करने में लगा है। मामूद ने झट एक बाँस उस सिर के गले में ठूस कर उसे एक कुर्सी पर खड़ा करके रख दिया। फिर दो-चार तौलियों से कुर्सी को लपेट कर नौ-दो ग्यारह हो गया।

पानी गरम करके रज़ाअली दूकान में आया। अँधेरा था, तिस पर वह एक आँख से अधा भी है,—रजा अली ने सोचा कोई गाहक दाढ़ी बनाने के लिये आकर बैठा है। उसने कहा, "सलाम वालेकुम साहब! आज बड़े सवेरे आ गये!" कह कर एक टीन के प्याले में वह गरम पानी भरा, फिर उसने साबुन उठा लिया और अस्तुरे को चमड़े पर रगड़ कर गाहक के पास आकर दाढ़ी में साबून और पानी लगाने के लिये उसके सिर पर हाथ रक्खा। हाथ से छू जाते ही सिर कुर्सी से ज़मीन पर गिर कर लुढ़कने लगा।

रजाग्रली के जाने के बाद यान्की कबाब के लिये एक गोश्त का टुकडा टोकरी मे से निकालने लगा। वह मन ही मन कह रहा था, ताजे गोश्त से नही बनायेगे। मुसलमानो को बासी ही गोश्त देना चाहिये। यह सोचकर एक बासी टुकडा ढूँढते-ढूँढते वह कटा हुआ सिर निकल आया।

यान्की ने आश्चर्य में आकर कहा, "अरे यह क्या ? यह कहाँ से आ गया ? किसका सिर है ? यह किसी मुसलमान का सिर मालूम हो रहा है। अच्छा ठीक है ! ऐसे मुसलमानो के सिर काटने मे मजा है। मुसलमान हम लोगो को काफिर कहते हैं। मुझे तो यही ख्वाहिश है कि सब मुसलमानों के सिर काटकर कबाब बनाऊँ।"

मगर उसे बडा डर मालूम हुआ। उसने मन ही मन कहा, "इसे किसी ने कत्ल किया है। किस दुश्मन ने मेरे सिर पर यह कत्ल लादना चाहा है ? मगर इस सिर को लेकर क्या करूँ ? कहाँ फेंक दूँ ?"

यान्की सोचने लगा। कुछ ही देर में उसने मन ही मन कहा, "हाँ, ठीक है। सजा पाये हुये उस यहूदी की लाश सड़क पर है, वहीं इसे रख आऊँ।"

उस जमाने मे किसी आदमी के फाँसी होने पर उसकी लाश तीन दिन तक सडक पर पडी रक्खी जाती थी, जिससे यह देख कर लोग डर जाँय और ऐसा काम न करें।

तब कुछ-कुछ दिन निकल आया था। सडक पर अभी तक लोगों का चलना शुरू नहीं हुआ था। यान्की उस सिर को एक कपडे में लपेट कर, कुछ दूर पर रक्खी हुई उस यहूदी की लाश के पास गया। उस आदमी का सिर अलग कर दिया गया था। उस लाश के दोनों पैरों के बीच मे उस सिर को रखकर भाग आया।

(३)

धूप निकल आई, दिन चढने लगा। सडक पर लोगों का आना-

जिस समय अब्दुल्ला सुलतान के गुप्त कमरे में बैठा था, उसी समय आगा साहब का सिर काट कर नौकर के लौटने की बात थी।

सुलतान नहीं चाहते थे कि मनसूर को मालूम हो कि वे अब किस भेष से शहर में घूमेंगे। मनसूर अब्दुल्ला को फकीर की पोशाक ला दी थी। बादशाह ने सोचा कि इससे मनसूर समझेगा कि बादशाह फक़ीर के भेष में रात को टहलेंगे। इसीलिये बादशाह खुद आकर अब्दुल्ला के पास से रूमाल लपेटा हुआ बंडल ले गये थे। उनका यह इरादा था कि उसी रूमाल के अन्दर एक सौदागर की पोशाक रखकर अब्दुल्ला को दे देंगे। मनसूर को यह पता नहीं लग सकता था। बादशाह के बण्डल ले जाने के पश्चात् जिस आदमी ने उस कमरे में प्रवेश किया था, वही आगा साहब का सिर लाया था। उस कमरे में धीमी रोशनी थी और बादशाह के उस गुप्त कमरे में कोई नहीं आ सकता था, इसीलिये नौकर ने सोचा था बादशाह यहीं जाने के लिये दर्जी का भेष बनाकर बैठे हुये थे। इसीलिये उस आदमी ने अब्दुल्ला के पैर के पास बंडल को रख कर अवनत होकर सलाम करके जमीन चूमी थी।

उस रात को मनसूर के अब्दुल्ला को लेकर बाहर चले जाने के बाद, बादशाह एक सौदागर की पोशाक लेकर कमरे में आये। दर्जी और मनसूर को न देखकर आश्चर्य-चकित हुये।

तब उन्होंने एक विश्वासी नौकर से पूछा, "जिस आदमी को आगा साहब के सिर लाने के लिये हुक्म दिया था—वह लौट आया है?"

नौकर ने कहा, "हाँ मालिक, वह लौट आया है।"

उस आदमी के आने पर बादशाह ने पूछा, "क्यों, काम खतम करके आये हो?"

नौकर ने कहा, "हाँ, इस दुनिया के मालिक, काम खतम करके हुजूर के पैर के पास उस सिर को रख गया था।"

यह सुनकर अब्दुल्ला काँपने लगा। उसने कहा, "मुआफ कीजिये साहब, मुआफ कीजिये! मुझे पता नहीं था—मुआफ कीजिये!" कहकर दोनों कान अपने हाथों से पकड़ कर घुटने टेक कर बैठ गया।

मनसूर ने पूछा, "वह सिर कहाँ है?" बूढ़े ने कहा, "मेरे घर पर नहीं है।"

"कहा गया?"

"वह अब तक आग मे भूना जा रहा है।"

मनसूर ने कहा, "भूना जा रहा है! उसे तू खायगा—क्या? जल्दी बता, क्या हो गया है?"

बूढ़े ने काँपते-काँपते सब बता दिया। मनसूर हसन रोटीवाले के पास गया। कुछ देर बाद उसने कहा, रज़ाअली नाऊ के पास वह रख आया था।

मनसूर, हसन और अब्दुल्ला—तीनों, नाऊकी दूकान में गये। नाऊ मारे डर के कुछ भी नहीं कह रहा था, मगर आखिर सब कह दिया।

चारों कनातची यान्की के दूकान मे पहुँचे। जब सिपाही यहूदियों को पीटने लगे थे तभी यान्की मारे डर के शहर छोड कर भाग निकला था। इसलिये यान्की नहीं मिल सका।

इसी समय मनसूर सड़क पर शोर सुनकर उसी तरफ गया। वहाँ जाकर देखा आगा साहब का सिर वहीं पडा था।

मनसूर ने दौड़ते-दौड़ते बादशाह के पास जाकर सब बाते कहीं।

बादशाह ने देखा, सिपाही राज्य मे विद्रोह करने को तैयार हो गये हैं। उन्होंने हुक्म दिया, आगा साहब का सिर लाकर बड़े समारोह के साथ दफना दो और सब सिपाहियों को पाँच-पाँच अशर्फियाँ इनाम दी जायँ।

बड़े समारोह के साथ आगा साहब के सिर को दफनाया गया। सिपाहियों के चुने एक आदमी को बादशाह ने आगा साहब के स्थान पर नियुक्त किया। फिर राज्य में शान्ति फैल गई। बादशाह के हुक्म से अब्दुल्ला दर्जी को दो सौ अशर्फियाँ इनाम मिलीं। बूढ़े दर्जी को अब कोई तकलीफ नहीं रही।